जगद्गुरु श्री रामानंदाचार्य श्री रामभद्राचार्यजी महाराज

प्रणीत

परम बड़भागी जटायु



प्रकाशक

श्री राघव साहित्य-प्रकाशन निधि

हरिद्वार (उ०प्र)

जगद्गुरु श्री रामानंदाचार्य श्री रामभद्राचार्यजी महाराज

प्रणीत

परम बड़भागी जटायु

प्रकाशक

श्री राघव साहित्य-प्रकाशन निधि

हरिद्वार (उ०प्र)

- प्रकाशक
  श्रीराघव साहित्य प्रकाशन निधि
  वशिष्ठायनम्
  रानी गली, भूपतवाला
  हरिद्वार (उ०प्र०) २४६ ४१०

- प्रथम संस्करण : ४००० प्रतियाँ संवत् २०४२
  द्वितीय संस्करण : ५००० प्रतियाँ संवत् २०५०
  श्री गुरुपूर्णिमा
  दि० ३-७-१९९३

- न्योछावर रु० २१-००

- मुद्रक
  प्रभात प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा

श्रीमद् गोस्वामीजी द्वारा

"जटायुजी की महान् मृत्यु की महान् प्रशस्ती"

प्रभुहिं बिलोकत गोदगत, हिय हित घायल नीचु ।
तुलसी पाई गीधपति, मुकुति मनोहर मीचु ॥

मुए मुकुत जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच ।
तुलसी सकल सिहात सुनि, गीधराज की मीचु ॥

मुए मरत मरि हैं सकल, घरी पहर के बीच ।
लही न काहू आज लौं, गीधराज की मीच ॥

मुए मुकुत जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच ।
तुलसी सबहीं ते अधिक, गीधराज की मीच ॥

रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय सुधि कहि सियराम कहि, देह तजी मति धीर ॥

दसरथ तें दसगुन भगति, सहित तासु कर काजु ।
सोचत बंधु समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराजु ॥

(दोहावली २२२ से २२७ तक)

"जटायु को राम उछंग लिये हैं"

देखि धरा पर लोटत गीधहिं राघव टेरनि कान किये हैं।
राजिवलोचन मोचत नीर सरीर पै पंकजपानि दिये हैं।
बार हि बार सुधारि के पंखहि बाल सुभाय तें नेकु भिये हैं।
"गिरधर" ईश कृपासुखधाम जटायु को राम उछंग लिये हैं।

"जटायु की धूरि जटान सों झारी"

दीन मलीन अधीन हो अंग बिहंग पर्यो क्षिति छिन्न दुखारी।
राघव दीन दयालु कृपालु को देखि दुःखी करुणा भई भारी।
गीध को गोद में राखि कृपानिधि नयन सरोरुह में भरे वारी।
बार हि बार सुधारत पंख जटायु की धूरि जटान सो झारी।

।। श्रीराम: शरणं मम ।।

सम्पादकीय

श्रीरामकथा जीव की व्यथा को दूर करती है। श्रीमद् गोस्वामी-पाद ने तो रामकथा को "भवसरिता तरणि" कहकर गाया है। तुलसी कृत श्री रामचरितमानस के सहस्रों कथावाचक अपनी विविध शैलियों से भगवद् भागवत् गुण गाकर सनातन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में लगे हैं। पर वर्तमान काल के संत वक्ताओं में रामायण के महान् प्रवक्ता आचार्य श्रीरामभद्रदासजी महाराज का नाम विद्वानों एवं संतों में समादरपूर्वक स्मरण किया जा रहा है।

मानस के प्रत्येक पात्र के विषय में आपकी विचारधारा यद्यपि अत्यन्त भावग्राहणी एवं रसमय है तथापि परम बड़भागी जटायुजी का चरित्र तो आपको अत्यन्त रुचिकर है। जिसे आप अत्यन्त भावपूर्ण शैली से प्रस्तुत करते हैं।

यह पुस्तक उन्हीं बड़भागी जटायु पर आचार्यश्री द्वारा दिये गये सात प्रवचनों का संग्रह है। जिन्हें ध्वनियन्त्र द्वारा ध्वनिबद्ध करके पुस्तकाकार में प्रस्तुत किया गया है।

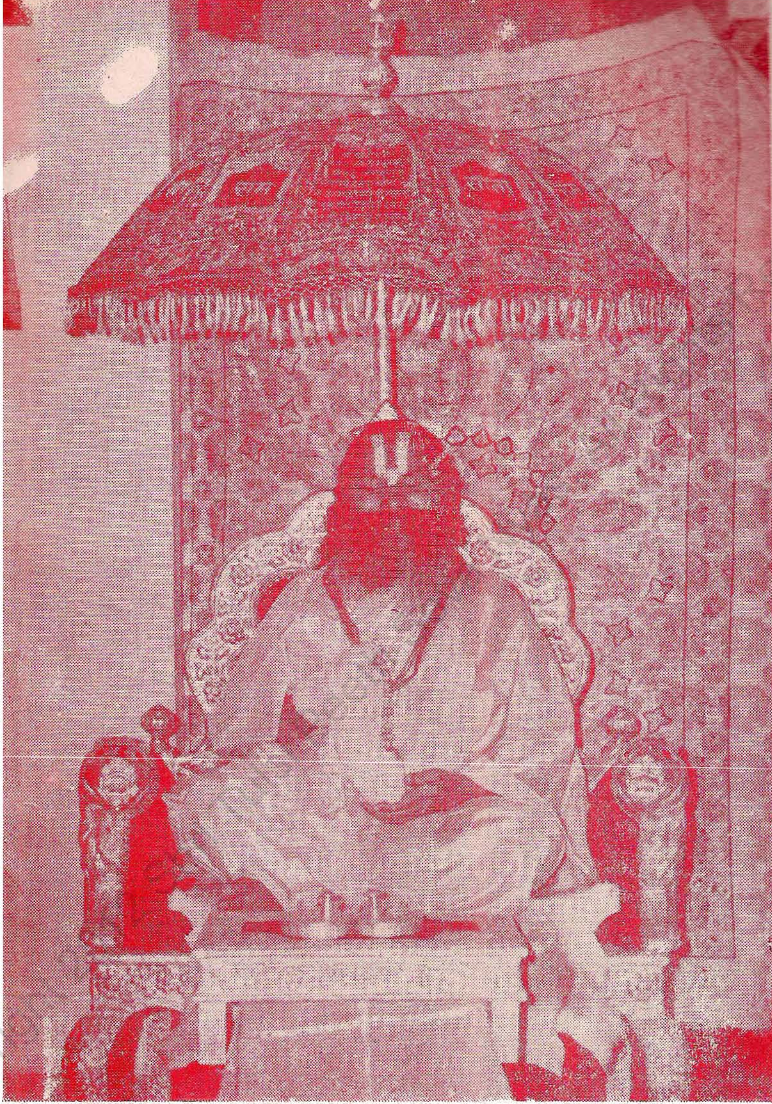
आचार्यश्री के पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों को पढ़कर प्रभावित अनेक विद्वानों, वक्ताओं एवं भावुकों के पत्र आते रहे। जिनमें कई महानुभावों ने "जटायु" पर नव्य साहित्य की अभ्यर्थना की थी उन सभी के करकमलों में "परम बड़भागी जटायु" पुस्तक प्रस्तुत कर हम अपने को परम बड़भागी अनुभव कर रहे हैं।

इस पुस्तक में कितने दिव्य उत्कृष्ट मानस के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है एवं भावुक वक्ता ने अपने रससिक्त अन्तःकरण से इसमें कितना अद्भुत रस घोला है इसका अनुभव तो श्रीराम कथा रसिक भावुक प्रबुद्ध पाठक स्वयं ही करेंगे।

आचार्य श्रीरामभद्रदासजी महाराज के समस्त साहित्य के प्रकाशन का भार "श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि" ट्रस्ट ने सहर्ष स्वीकारा है।

हम आचार्यश्री के बड़े ही कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने साहित्य सेवा के लिये "श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि" ट्रस्ट को सुअवसर देकर बड़भागी बनाया।

निवेदिका
गीता बहन
मैनेजिंग ट्रस्टी
श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि



सर्वाम्नाय श्री तुलसी पीठाधीश्वर श्रीमद् जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य
अनन्त श्री समलङ्कृत १००८ श्री रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ - आमोदवन श्री चित्रकूटधाम

।। श्री राघवो विजयते ।।

लेखकीय उद्गार

परिपूर्णतम, परात्पर, परमात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम, भगवान्, श्रीमद् राघवेन्द्र सरकार की पतितपावनी अहैतुकी कृपा का परिपक्व फल है सत्संग।

इस सत्संग तीर्थराज में निमज्जन करके, मानव चारों फलों को पाकर, उनके भी फलस्वरूप भगवत् भक्ति सुधा से, अनायास ही अपनी सांसारिक क्षुधा को मिटाकर, वसुधा का ललाम बन जाता है। वैदिक सत्संग क्षीर सागर का परिपूर्ण सुधाकर है कवि-कुल तिलक, सकल संतकलहंसावतंस, श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा प्रणीत, आर्य संस्कृति का संग्रहभूत, श्रीरामचरित मानस। जिसके अक्षर अक्षर में लहराती हुई, श्रीरामभक्ति सुधा असंख्य नर नारियों को सदा अमरत्व प्रदान कर रही है।

मेरा अपना भी जीवन उसी सुधा सींकर से संचालित है और वस्तुतस्तु श्रीराम कथा के लिये ही मेरा अपना सब कुछ है। वही मेरी जिजीविषा का केन्द्र भी है।

इसीलिये श्रीरामचरित मानस नवाह पारायण कथा क्रम में धाराप्रवाह से आठ आठ घण्टे बोलने पर भी मुझे श्रम की अनुभूति नहीं होती क्योंकि यही मेरी अपनी पूजा है। इसी श्रीराम कथा की छत्रछाया में मुझे अपने प्राणों से प्यारे, कौशल्या दुलारे, नन्हे मुन्ने राघव का सतत भावात्मक दर्शन होता रहता है। इससे मैं अपने को कैसे अलग कर सकूं?

ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती

मेरा मनोवारण इसी रामकथा सुधा सरोवर में सतत निमग्न रहे, यही एक श्री राघव के समक्ष अभ्यर्थना है।

श्री जटायु प्रसंग पर प्रस्तुत किये हुए सप्त प्रवचन प्रसून इसी श्री रामकथा मन्दाकिनी के सुधा सींकर स्वरूप हैं। श्रीमद् राघवेन्द्र सरकार की मंगलमयी प्रेरणा से सहज रूप में मनोदर्पण पर प्रतिबिम्बित मानस भावमाधुरी का ही यहाँ दिग्दर्शन है।

इस प्रवचन माला में श्रीराघवेन्द्र कृपा से यही प्रयास रहा है कि मानस की परंपरा के विरुद्ध किसी भी प्रकार का अपलाप न हो एवं मानस के प्रतिपाद्य वैष्णव दर्शन का ही यहाँ यथा संभव विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है।

मैं प्रभु की इस वांग्मयी सेवा में कितने अंशों में सफल हुआ हूँ इसका मूल्यांकन तो भगवद् पाद प्रपन्न व्युत्पन्न संतजन ही करेंगे। मैं इस मंगलमय प्रसून माला को श्रीमद् तुलसीदासजी महाराज के ही श्रीकरकमलों में सादर समर्पित कर रहा हूँ।

इस पुस्तक के प्रस्तुतिकरण में तथा ध्वनिबद्ध प्रवचनों को अक्षराकार देने में जिन महाविभूतियों का सहयोग रहा है, वे मेरे इतने अन्तरंग हैं कि उनके प्रति कुछ भी प्रशंसा के वाक्य कहना सीधी अपनी ही प्रशंसा मानी जायेगी।

मैं "श्रीराघव साहित्य प्रकाशन निधि" तथा उसके सक्रिय ट्रस्टियों को अनेक साधुवाद एवं धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिनके मंगलमय मुद्रण एवं प्रकाशन के परिणामस्वरूप "परम बड़भागी जटायु" पुस्तक प्रसून गुच्छ समस्त सुधीजनों को उपलब्ध हो रहा है।

मैं परम आश्वस्त हूँ निश्चित ही 'परम बड़भागी जटायु" पुस्तक को पढ़कर विश्व के सहस्रशः नरनारी अपने को श्रीराम प्रेमामृत सागर में आप्लावित कर परम बड़भागी बना सकेंगे।

इत्याशास्ते समस्त विदुषां वैष्णवसतां सद्गुरुचरणानां वात्सल्यभाजनं राघवीयो रामभद्रदासः

(चित्रकूटधाम)

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

❀ प्रथम–प्रसून ❀

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं, सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं, नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।
शरणं मिथिलेशकन्यका, शरणं मे रघुवंशभूषणः ।
शरणं पुनरेवतावुभौ, शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ।।
सीतानाथसमारम्भां, श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां, वन्दे श्रीगुरुपरम्पराम् ।।
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च, कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो, वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।।
स जयति जगति जटायुः, प्रभुपदकमलाभिषक्तनैजायुः ।
दशवदनकदनहेतुः, यस्यास्ते विश्वविश्रुतं विरुदम् ।।
कहँ अंगद बिचारि मन माँही ।
धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।।
राम काज कारन तनुत्यागी ।
हरिपुर गयेउ परम बडभागी ।।

श्रीमद् अकारणकरुणावरुणालय, प्रचुरभयभंजन, प्रणत जनरंजन, श्रीमन्मैथिलीनिवास, विदितपूर्णचन्द्रहास, करुणानिधान, भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम, श्रीमद् रामभद्रजू की असीम भुवनपावनी कृपा का मंगलमय सारसर्वस्वरूप भगवत्कथा सत्संग का सुअवसर प्राप्त हुआ है ।

अब हम सभी भावुक जनं अपने अन्तःकरणचतुष्टय को भगवद् विग्रह चतुष्टय में तल्लीन कर, श्री रामकथा मंदाकिनी में

विगाहन करने का प्रयास करते हुए, अपने प्रत्येक क्षण को सदुपयुक्त करें।

मानव जीवन नाना प्रकार की विभीषिकाओ से त्रस्त हो रहा है। इसे कहीं शान्ति नहीं मिल रही है। हम सभी शान्ति चाहते हैं। पर वह मिलेगी कहाँ ? शास्त्रों ने कहा है कि,

"यो वै भूमा तत् सुखम्, नाऽल्पे सुखमस्ति"

जो भूमा है वहीं सुख है, अल्प में कभी भी सुख नहीं होता।

अतः गोस्वामिपाद ने भी समर्थन किया—

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।

तो निश्चित हुआ कि श्री राघवेन्द्र की शरणागति में ही वास्तविक सुख मिलता है। जब तक हम भगवत् शरणागति नहीं स्वीकारेंगे तब तक हमें कल्प कोटि पर्यन्त सुख नहीं मिलेगा।

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक धाम तजि काम॥

हमको सर्वत्र भय ही दीखता है। सबको सभी स्थानों पर भय है, क्योंकि हमको कोई अपना दीखता ही नहीं। अपना वह होता है कि जहाँ जाकर हम विश्राम करें। संसार में कहीं विश्राम मिलता ही नहीं। कोई न कोई क्रिया हमें करनी ही पड़ती है।

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माणि शेषतः।
(गीता १८-११)

देहधारी कर्म को छोड़ नहीं सकते।

मानलो हम चारपाई पर सो रहे हैं तो वह शयन भी क्रिया ही है। अतः जो स्वयं विश्राम स्वरूप होता है वहीं वास्तविक विश्राम मिलता है! हम सभी, लोक में रहते हैं, लोक से अतीत नहीं हैं तो सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देने का कार्य कौन करता है?

जो आनंद सिन्धु सुख रासी, सीकर ते त्रैलोक सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा, अखिल लोक दायक विश्रामा॥

भगवान् ही सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देते हैं। अतः विश्राम यदि पाना है, तो वहीं जाना चाहिये, क्यों कि संसार का विश्राम

सापेक्ष है। एक दो घंटे विश्राम किया पुनः अपने काम में लगे। किन्तु भगवान् के यहाँ जाने के बाद व्यक्ति को लौटना नहीं पड़ता। अतः गीताजी में कहा है कि--

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम ।।

(गीता १५-६)

जहाँ जाकर कोइ वापस लौटताही नहीं वही मेरा परमधाम है! श्रुति भी कहती है कि—

न पुनरावर्तते न पुनरावर्तते न पुनरावर्तते ।।

भगवान् के यहाँ जाकर कोई परावृत्त नहीं होता। इस विश्राम की भी कई विधायें हैं। अन्य लोगों के मत में शरीर छोड़ने के बाद विश्राम मिलता है। वेदान्ती कहते हैं कि प्रारब्ध क्षीण होने के पश्चात् विश्राम मिलता है लेशाविद्या तथा मूलाविद्या का सर्वतोभावेन अत्यन्ताभाव हो जायेगा तब विश्राम मिलेगा। किन्तु हमारे यहाँ तो जीते जीते शरीर के रहते रहते विश्राम मिल जाता है।

सुन्दरकाण्ड के प्रारंभ में मैनाक के विश्रामार्थ अनुरोध करने पर श्री हनूमान्‌जी ने प्रतिज्ञापूर्वक कहा—

हनूमान् तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
रामकाज कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ विश्राम ।।

जब तक राघवजी का कार्य निष्पन्न नहीं होता तब तक मुझे विश्राम् नहीं मिलेगा। समुद्र को पार कर लिया।

भगवान् ने कहा कि मेरा कार्य क्या है? अभी तक तुम समझ नहीं सके। भक्त को मेरे स्वभाव का स्मरण दिलाना ही मेरा कार्य हैं।

विभीषणजी से हनूमान्‌जी का कथोपकथन हुआ! रामकथा का यह प्रभाव है कि ज्ञानिनामग्रगण्य हनूमान्‌जी ने मैनाक के दिये हुए विश्राम को ठुकरा दिया, किन्तु यहाँ रामकथा कहते कहते अपने आप ही उनको विश्राम मिल गया—

एहि विधि कहत रामगुनग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ।।

बस इस अनिर्वाच्य विश्राम की ही प्रत्याशा में हम भगवत भागवतचरित्र का उपोद्घात प्ररंम्भ करते हैं।

श्री माया सीता का रावण के द्वारा अपहरण कर लिया गया। प्रभु श्री राम सुग्रीव से मैत्री करने के पश्चात् प्रवर्षण पर्वत पर समय व्यतीत कर रहे हैं। स्वयं वे प्रवर्षण हैं। प्रवर्षण का अर्थ होता है "प्रकृष्टं वर्षति इति प्रवर्षण:" जो स्वयं बरसता हो।

राघव स्वयं बरसने वाले मेघ हैं।

"कृपावारिधर राम खरारी" जो स्वयं कृपावारिधारा का वर्षण करते हैं आज वे प्रवर्षण पर्वत पर विराज रहे हैं। अर्थात् वे अपनी विभूति में ही विराज रहे हैं। चार महीने बीत गये, प्रभु स्वयं मेघ हैं, वर्षा हो रही है किन्तु वर्षण में आनन्द तभी आता है जब बादल को बिजली मिलती है। प्रवर्षण पर विराजमान राघवेन्द्रजी ने जैसे ही वर्षा का दृश्य देखा तुरन्त सोचा कि अब भारत के इतिहास में भी वर्षा आनी चाहिये।

बरसा घोर निसाचर रारी, सुरहित सालि सुमंगलकारी ॥

राक्षसों से युद्ध, वर्षा ऋतु की भूमिका को निभाने के लिये प्रस्तुत होगा। वर्षा ऋतु के आगमन में इन्द्रधनुष का दर्शन होना चाहिये। सुग्रीव के प्रति प्रभु कुपित हुए -

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी, पावा राज-कोष-पुर-नारी।

तब तक लक्ष्मणजी तुरन्त धनुष को उठा लेते हैं।

लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना, धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।

इस प्रकार इन्द्रधनुष का उदय भी हो गया! अब ठीक हुआ। किन्तु बड़ी घनघोर वर्षा के लिये बहुत से इन्द्रधनुष चाहिये। एक इन्द्रधनुष से यह कार्य सम्पन्न नहीं होगा। अत: गोस्वामीजी राक्षसों के युद्ध को वर्षा ऋतु से और वानरेन्द्रों के लंगूरों को इन्द्रधनुष से उपमित करते हैं।

कपि लंगूर विपुल नभ छाये। मनहु इन्द्रधनु उए सुहाये ॥

बन्दरों की पूँछ रूपी इन्द्रधनुष को उपस्थित करने के लिये उनका आह्वान भी आवश्यक है। इसलिये समस्त वानरभटों को बुलाने के लिये लक्ष्मणजी को भगवान् ने समझाकर भेजा।

"भय दिखाय लै आवहु तात सखा सुग्रीव"

सुग्रीव को लाया गया और सुग्रीव ने समस्त वानरभटों को तत् तत् दिशाओं में भेज दिया। कुछ मुख्य वानरभट दक्षिण दिशा को जा रहे हैं। बड़ा विचित्र दृश्य है राघव की लीला में।

भगवान् श्रीराघवेन्द्र को सीताजी के विषय में चार लोगों ने बताया।

जटायु ने अपहर्ता का नाम तथा उसके गमन की दिशा बताई।

नाथ दसानन यह गति कीन्ही, तेही खल जनकसुता हरि लीन्ही ।।
लै दच्छिन दिसि गयउ गुसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं ।।

शबरीजी ने सुग्रीव से मिलने का स्रोत बताया।

पंपासर हि जाहु रघुराई। तहँ होइहैं सुग्रीव मिताई ।।

सुग्रीव ने सीताजी के वस्त्र संकेत बताये

मन्त्रिन्ह सहित इहाँ इकबारा, बैठ रहेउ कछु करत बिचारा।
गगन पंथ देखी मैं जाता, परबस परी बहुत बिलपाता ।।
राम राम हा राम पुकारी, हमहि देखि दीन्हेउ पटडारी।
माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा, पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।।

आगे चलकर संपाती ने उनका निकेत भी बता दिया।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका, तहँ रह रावन सहज असंका ।।
बन असोक उपवन तहँ रहई, सीता बैठि सोच रत अहई ।।

अतः जटायुजी के प्रथम निर्देश के आधार पर मुख्य-मुख्य वानर भटों को दक्षिण दिशा की ओर भेजा गया।

सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूछेहु सब काहू ।।

दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं वानरभट। परिश्रम करके थक चुके हैं फिर भी सीताजी की प्राप्ति नहीं हुई। तब उन्होंने आमरण अनशन का निश्चय किया। उसी समय संपाती ने सोचा बड़ा अच्छा अवसर मिला मैं सबको खा जाऊंगा। उस परिस्थिति में अंगदजी के मुख से जो जटायु के प्रति उद्गार निकले वही वचन उनके चरित्र को कहने के लिए बहुत समर्थ हैं।

संपाती और जटायु में तुलना करते हुए अंगदजी ने अपना पक्ष रखा कि देखो एक गीध तो वह है कि जो रामजी के कारण अपने शरीर को समाप्त करके भगवल्लोक को चला गया और एक यह है कि जो रामजी के कार्य में लगे हुए वानरों को खाना चाहता है।

कह अंगद बिचारि मन माँहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।।
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी।।

अंगदजी विचार कर रहे हैं कि जटायु के समान कोई धन्य नहीं है। धन्य शब्द का प्रयोग हम बहुशः किया करते हैं। परन्तु यदि इस शब्द के अर्थ पर विचार किया जाय तो बड़ी ही शान्ति और रोचकता का अनुभव होता है।

धन्य शब्द संस्कृत में धन शब्द से बनता है। **"धनगणं लब्धा"** धन्य माने जिसको धन प्राप्त हुआ हो। **"धन्य जटायू सम कोउ नाही"** अर्थात् सभी धन्य धन प्राप्त करके कृतार्थ होते हैं।

पर जटायु को जैसा धन प्राप्त हुआ वैसा धन किसी को नहीं प्राप्त हुआ।

एक बार महर्षियों की एक गोष्ठी हुई। गोष्ठी का कहीं कहीं अर्थ होता है प्रसाद पाना। किन्तु हमारे शास्त्रों में गोष्ठी का अर्थ होता हैं विद्वानों की सभा। गोष्ठी में यह चर्चा हुई कि इस जगतीतल में जघन्य माने नीच कौन है?

किसी ने कहा कि जो धन से हीन है वही जघन्य हैं। तो किसी ने कहा कि नहीं नहीं गुण से हीन व्यक्ति ही जघन्य है। किन्तु समस्त वेदों के वेत्ता व्यासजी ने कहा कि धन और गुण तो आगन्तुक है वास्तव में जघन्य वही है जो नारायण के स्मरण से हीन है।

केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः,
केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिल वेद-पुराण-विज्ञो,
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः।।

जिसके हृदय में रघुनाथजी की मंगलमय, मृदुल, मृदुल कोटि कोटि कन्दर्प कमनीय, त्रैलोक्य लक्ष्मी, लोकाभिराम, लावण्यधाम, सकल लोक लोचनाभिराम, निखिल भुवनाभिराम, कोटिमन्मथाभिराम,

रमणीय मुखचन्द्र की बाँकी झाँकी नहीं आ सकी वास्तव में वही जघन्य है नीच है ।

अतः यह विचार करना चाहिये कि—

"धन्य जटायू सम कोउ नाहीं" इस पद में श्री अंगद का क्या अभिप्राय रहा होगा ?

तात्पर्य यह कि जैसे किसी से कहा जाय कि राघवेन्द्र के समान कोई विद्वान् नहीं । इसका अर्थ यह है कि राघवेन्द्र में जैसी विद्या है वैसी किसी में भी नहीं हैं । वैसे ही "धन्य जटायू सम कोउ नाहीं" इसका आशय यही होगा कि जटायु को जैसा धन प्राप्त हुआ वैसा धन आज तक किसी को भी प्राप्त नहीं हुआ ।

धन की आचार्यों ने कई प्रकार से व्याख्या की है । हाथी, घोड़ा, हीरे, मोती, जवाहरात, आभूषण, रुपये आदि यह भौतिक धन हैं । कबीरजी ने कहा कि संतोष ही परम धन है ।

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान ।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान ।।

हमारे गोस्वामीजी से पूछा गया कि परम धन क्या है ? गोस्वामीजी ने कहा कि संतोष धन यह परम धन नहीं है किन्तु संतोष धन भी जहाँ प्रकट होता है वही धन मुख्य धन है ।

श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । विश्वामित्र महानिधि पाई ।।

हमारी दृष्टि में तो श्री रघुनाथजी ही महान् धन हैं । "धिनोति इति धनम्" जो व्यक्ति को संतोष देता है उसको धन कहते हैं । राघवेन्द्रजी संतोष देते हैं ।

भरतजी के मन में बड़ा असंतोष था । भरतजी अपने मन में अपने को रंक मान रहे थे । यही नहीं उन्हे धनी बनाने के लिये कैकयी ने चौदह वर्ष तक श्रीराघवेन्द्र को वनवास देकर पूरे अवध को विपत्तियों का जमघट बना दिया ।

लखन रामसिय कहुँ बन दीन्हा । पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ।।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ।।
मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सबकर काजू ।।

भरतजी ने कहा कि लक्ष्मण, रामजी और सीताजी को तो वन दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वयं विधवापन लेकर अपयश लिया, प्रजा को शोक और संताप दिया, और मुझे सुख, सुयश और उत्तम राज्य देकर कैकेयी ने सभी का काम बना दिया।

इस प्रकार अनेक विपत्तियों को एकत्र किया केवल भरतजी को धनी बनाने के लिये। फिर भी वे धनी नहीं बने। धनी कैसे बनेंगे? क्योंकि धन तो राघवेन्द्र हैं और वे चले गये।

"करम चोर नृप पथिक मारि मानो राम रतन लै भाग्यो ॥

जब राम रूप रत्न ही चला गया तो क्या अयोध्या में धन रहा? अयोध्या निर्धन रह गई।

रामजी एक रत्न है।

रामरत्नमहं वंदे चित्रकूटपतिं हरिम्।

प्रश्न हुआ कि इस रत्न को किसने प्रकट किया तथा किसने अपने अलंकार के रूप में स्वीकारा।

कौशल्यासूक्तिसंभूतं जानकी-कण्ठ-भूषणम् ॥

यह रत्न कौशल्या रूप सीपी से प्रकट होकर जानकीजी के कंठ का आभूषण बना।

भरतजी को सम्पूर्ण राज्यपद मिला किन्तु उन्होंने सब छोड़ दिया सोचा कि इससे हमारी रंकता थोड़े ही जायेगी। चित्रकूट में आकर श्री रामचन्द्रजी के चरणचिह्न भरतभद्र ने निहारे तो कहते हैं कि—

हरषहि निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारस पायहु रंका ॥

श्रीराघवेन्द्र जानते हैं कि अभी इन्हें संतोष नहीं मिला। अतः जब उन्होंने अपनी मंगलमय वाणी से यह कहा कि—

सोबिचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

तब गोस्वामीजी को यह कहना पड़ा कि—

भरतहि भयेउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि विमुख दुख दोसू ॥

प्रेम रूप रत्न भी प्रकट हुआ। भरतजी ने कहा कि धन तो मुझे मिल गया पर धन को रखने के लिये तिजोरी भी तो चाहिये। कहीं कोई चोर-डाकू डाका न डाल दे। तभी—

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही।
सम्पुट भरत सनेह रतन के। आखर जनु जुग जीव जतन के।।

मंगलमय अनिर्वचनीय, दिव्यदिव्य, भव्यभव्य, नव्यनव्य, लोकातिशय, सकल कल्मषापहारी, निखिलमुनि मनोपहारी, मंगलमय श्रीमदानंदकारी, सकल योगीन्द्र मुनीन्द्र, परम वन्दनीय महाभागवत जेगीयमान, दिव्यगौरवभग्न सकलभक्तरौरव, भगवत् प्रेमामृतरूप पादुकायें उसी परम रत्न का यह डिब्बा है।

"सम्पुट भरत सनेह रतन के"

अतः निश्चित हुआ कि हमारे धन श्रीराम हैं। क्योंकि सबसे श्रेष्ठ धन रत्न होता है। सबसे बड़ा धन का आगार राज्य माना जाता है और सबसे बड़ा धनवान् राजा माना जाता है। संयोग से रत्न, राज्य और राजा इन तीनों शब्दों का प्रथम अक्षर रकार राघवेन्द्र से ही आया।

शास्त्र ने उसी धन को परमधन माना है कि जिस धन की प्राप्ति के पश्चात् फिर किसी भी धन की प्राप्ति की इच्छा ही नहीं रहती।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाऽधिकं ततः।।

(गीता-६-२२)

क्योंकि शास्त्र की भी धनवत्ता सिद्ध करने के लिये उस शब्द के अन्त में रकार ही तो है। जो राम शब्द का प्रथम वर्ण है। इसके बिना क्या शास्त्र की शास्त्रता सिद्ध हो पायेगी ?

विभीषणजी से श्रीराघव ने एक अन्तःप्रश्न किया लंकेश ! तुम्हें कुछ चाहिए ?

विभीषणजी ने कहा कि नहीं—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।

अतः गोस्वामीजी ने इस धन को मुनियों का धन जन-सर्वस्व तथा शिवप्राण कहा है।

मुनि धन जन सरबस सिव प्राना ! बाल केलि रस तेहि सुख माना ।।

वे भक्तों के सर्वस्व हैं । हमारे "स्व" चार होते हैं । आत्मा, आत्मीय, धन और जाति । अतः राघवेन्द्र ही भक्तों के आत्मा भी हैं आत्मीय भी हैं धन और जाति भी हैं ।

इसी आशय से श्रीयामुनाचार्यजी ने कहा है कि

विलासविक्रान्तपरावरालयम्,
नमस्यदार्तिक्षपणे कृतच्छनम् ।
धनं मदीयं तव पादपंकजम्,
कदानुसाक्षात् करवाणि चक्षुसा ।।

(आलवन्दारस्तोत्र)

भक्त कहता है कि हे भगवन् ! आपके मंगलमय चरणारविन्द ही हमारे धन रूप में वर्तमान है, उन्हे मैं अपनी आँखों से कब देखूंगा । उस परमधन का कब मैं साक्षात्कार करूंगा ।

एक भावुक भक्त ने कहा कि—

दुरीश्वरद्वारि बहिर्वितर्दिका,
दुराशिका यै विहितोय मंजलिः ।
यदङ्जनाभं निरपाय मस्ति में,
धनंजयस्यंदन भूषणं धनम् ।।

मैंने इतने दिनों तक संसार में अपने को ईश्वर माननेवाले बड़े बड़े सेठ साहुकार, कृपण राजा महाराजाओं के द्वार पर अपने हाथ पसारे । मैं नहीं जानता था कि मेरे पास तो ऐसा धन है कि जिसका कभी नाश नहीं होता है तथा जो स्वयं धनंजय अर्थात् धनपति को जीतने वाले के स्यंदन का भी भूषण बना अर्थात् अर्जुन के रथ का आभूषण रूप धन बना । जिसके बिना कुबेर को भी जीत कर धनंजय अपने को धन विजेता नहीं मान सके ।

जब दुर्योधन ने दस कोटि नारायणी सेना का चयन किया । और अर्जुन ने एकमात्र अतसिकुसुमोपमय कान्ति, करुणानिधान, कमललोचन, मधुसूदन, चक्रपाणि, श्रीमद्रुक्मिणिकान्त, श्रीकृष्ण का चयन किया ।

तब प्रभु की आँखों में आँसु आये और प्रभु ने कहा अर्जुन! तुमने बड़ी भूल की है, कि दस कोटि सशस्त्र सेना का परित्याग करके निरस्त्र एकमात्र मेरा चयन किया।

अर्जुन ने कहा कि मैंने सबसे उत्तम कार्य किया है कि जिसके भ्रू विलासमात्र से अनन्त अनन्त ब्रह्माण्डों का उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हो जाता है। उसे अपने रथ का भूषण बनाया तो अब जीवन में दूषण आयेगा ही कैसे? अतः हे सरकार! मैंने अपने जीवन रूपी नंदिघोष रथ की बागड़ोर आपके कर कमलों में सौंप दी।

चरणों में अर्पित मस्तक है चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो भेंट तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो॥

अतः तात्पर्य यही कि श्रीराघवेन्द्र ही सबसे बड़े धन हैं। उनको पाकर फिर किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रह जाती। उन्ही को जटायु ने कितने प्रेम से पाया कि इस प्रकार किसी ने पाया ही नहीं। अतएव अंगदजी कहते है कि "धन्य जटायू सम कोउ नाहीं"।

गोपियाँ कहती हैं कि, हम विरह की दावाग्नि में जल रही हैं उस दावाग्नि से हमें जिलाया किसने? तो—

तव कथामृतं तृप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मशापहम्॥
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदाजनाः॥

रामावतार में भगवती सीताजी को भी इसी कथाने जिलाया।

सीता मन विचारकर नाना। मधुर वचन बोले हनुमाना॥
रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहि सीता कर दुःख भागा॥
लागी सुने श्रवन मनलाई। आदिहु ते सब कथा सुनाई॥
श्रवणामृत जेहि कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥

आपकी कथा अमृत है और अमृत तो मुख से पिया जाता है पर आपकी कथा रूप अमृत तो कानों से पिया जाता है। अतः रामचन्द्र विशेषण दिया। यहाँ चन्द्र विशेषण इसलिये दिया कि रामजी चन्द्रमा है और चन्द्रमा में अमृत रहता है। रामजी रूप चन्द्रमा में जो उनके गुण हैं वही अमृत के समान हैं जैसे ही चन्द्रमा में नित्यसम्बन्ध से अमृत विराजमान है वैसे ही राघवरूप चन्द्रमा में नित्यसम्बन्ध से अमृतत्व रूपगुण बिराजमान है।

जैसे चन्द्रमा का अमृत औषधियों को जिलाता है।

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥

(गीताजी १५-१३)

उसी प्रकार राघवजी के गुण अमृत बनकर, सबको जिलाते हैं। और विशेष बात तो यह है कि चन्द्रमा में एक ही प्रकार का अमृत है परन्तु यहाँ तो अनन्त अनन्त गुण होने से अनन्त अनन्त अमृत विराजमान है। सौन्दर्य, माधुर्य, वात्सल्य, सौजन्य, संस्पर्श, औदार्य, गांभीर्य, चारित्र्य ये सभी अमृत है।

इससे यहाँ यह सुस्पष्ट हुआ कि रामजी रत्न हैं और उनका नाम भी रत्न है। मतवाली मीरा ने गाया कि—

"पायो जी मैंने रामरतन धन पायो"

मतवाली मीरा का जरा पागलपन तो देखो। श्याम दीवानी मीरा ने राम रत्न को स्वीकारा। श्याम दीवानी मीरा भी राम का जप करती थी। मीरा जानती थी कि राम शब्द का अर्थ तो "राकारात् विद्यते राधा मकरात् मधुसूदनः" रा याने राधा और म याने मधुसूदन ! यदि केवल कृष्ण कहेंगे तो अकेले कृष्ण का ही जप होगा पर राम के जप से राधा माधव दोनों का जप हो जाता है।

तात्पर्य यह कि मतवाली मीरा ने चित्तौड़ के राज्य साम्राज्य को छोड़कर रामरत्न को पा लिया। अतः अर्वाचीन राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने पंचवटी में भी कह दिया कि—

बना हुआ है प्रहरी जिसका उस कुटिया में क्या धन है।
जिसकी रक्षा में रत इसका तन है मन है जीवन है।
मर्त्यलोक मालिन्य मेंटने स्वामी संग जो आई है।
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह कुटी आज अपनाई है॥

कौशल्या व दशरथजी महाराज शतरूपा एवं मनु के शरीर से तेईस सहस्र वर्ष तक उग्र तपश्चर्या करके राघवेन्द्र को पा सके। उनसे बाबा विश्वामित्र जी मांगकर ले आये।

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

क्या मांगकर पाना भी कोई पाना होता है। विश्वामित्रजी जो नवीन सृष्टि के कर्ता, वे भी दशरथजी को प्रभु सम्बोधन करके बुलाते हैं।

धरम सुजस प्रभु तुम्ह कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान ।

अर्थात् इतनी लघुता स्वीकार ली कि इन्हें दशरथजी को प्रभु कहना पड़ा ।

रहिमन, जाचकता गहे, बड़ो छोट होइ जात ।
नारायणहुं को भयो, बामन अंगुल गात ।।

विश्वामित्रजी मांगकर लाये तब मिथिला के लोगों ने श्रीरामरूप धन को लूटना चाहा ।

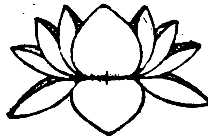
धाये धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंकनिधि लूटन लागी ।।

इस धन की प्राप्ति के लिये किशोरीजी को भी बड़ा परिश्रम करना पड़ा । किन्तु जटायु को कोई प्रयास नहीं करना पड़ा ।

धन निरन्तर कहीं न कहीं रखा जाता है । आज तक यह धन कभी दशरथजी के गोद में तो कभी कौशल्याजी के गोद में रहा जो सदा आधेय बना रहा आधार नहीं । जो नित्य धन बन कर धनी की गोद में रहा । पर आज धन ने ही धनी को गोद में ले लिया । "राघव गीध गोदकरि लीन्हो" अतः

कहँ अंगद विचारि मन माँही । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।
रामकाज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयेउ परम बड़भागी ।।

।। इति शम् ।।



॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

❀ द्वितीय प्रसून ❀

श्रीरामचन्द्रः श्रितपारिजातः समस्तकल्याणगुणाभिरामः ।
सीतामुखाम्भोरुहचंचरीको, निरन्तरं मंगलमातनोतु ॥

सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्यविहारिणौ ।
वंदे विशुद्धविज्ञानौ, कवीश्वरकपीश्वरौ ॥

कृत्वा युद्धं परमतुमुलं पंक्तिवक्त्रेण साकम् ।
हुत्वा प्राणान् जनकतनया-त्राणयज्ञैकदीक्षान् ॥

दृष्टवा रामं नलिननयनं तन्मुखाम्भोजभृंगो ।
भूत्वा भूत्या महितचरणो धन्यभूतो जटायु: ॥

कहँ अंगद बिचारि मन माँहो । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।
रामकाज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयेउ परमबड़भागी ॥

परम कारुणिक, भक्तवत्सल, अकारणकरुणावरुणालय मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार की मंगलमय अहैतुकी कृपा से प्राप्त हुई इस रामकथामंदाकिनी में निमज्जन करके हम अपने तीनों तापों को शान्त करने की चेष्टा करें।

यह स्पष्ट है कि जीवन में सबसे बड़ा भाग्य उसी का है, जो राघवेन्द्रजी के चरणारविन्द का मधुप है। गोस्वामिपाद ने तीन प्रकार के जीवों की चर्चा की है। विषयी, साधक और सिद्ध। इन तीनों में उत्कर्षापकर्ष कोटि का साधुसमाज में आदर नहीं है। सिद्ध भी यदि श्रीरामजी के प्रेम में झूमता नहीं तो साधुसमाज में उसका आदर नहीं होता। साधुसमाज में उसका आदर है कि जिसका मन रामप्रेम में सरस हो गया हो।

विषयी साधक सिद्ध सयाने, त्रिविध जीव जग वेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासु, साधु सभा बड़ आदर तासु ॥

रामजी के प्रेम में उसी का मन सरस हो सकता है, जिसका मन संसार से नीरस हो गया हो। क्योंकि एक ही मन दो स्थानों में नहीं लग सकता। या तो संसार में लगेगा, या तो साँवले सरकार में। अतः गोस्वामीजी अपने मन को शिक्षा दे रहे हैं कि रे मन तू! जगत् से निरस और रामजी में सरस हो।

रे मन जगते नीरस भै, सरस राम तें होंही।
भलो सिखावन देत हैं, निसदिन तुलसी तोंही।।

आज जटायु ने रामजी के चरणों में सरसता का आधान करने के लिये संसार की नीरसता स्वीकारी। उन्हें संसार में कोई रस नहीं रहा।

गोस्वामीजी ने इस प्रसंग को बड़े ही समारोह से प्रस्तुत किया है। अरण्यकाण्ड में प्रायः बहुतसी घटनाओं एवं पात्रों का सम्बन्ध माया से है। ललित नरलीला की पूर्व भूमिका में शूर्पणखा भी माया-रूप में नकली वेश में प्रभु के समक्ष आती है।

रुचिर रूप धरि प्रभुपहि आई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।

पुनः खर दूषण एवं त्रिशिरा मायापूर्वक ही युद्ध प्रस्तुत करते हैं।

महि परत पुनि उठि भिरत मरत न करत माया अति घनी।

"मायाचारो मायया वर्तितव्यः"

अर्थात् मायावी के साथ माया से ही उपस्थित होना चाहिये। इस नीति के अनुसार मायानाथ प्रभु ने भी अपनी माया से समस्त राक्षसों को रामाकारिता वृत्ति से सम्पन्न करके परस्पर शस्त्र-प्रहार करवा कर अनायासेन मार डाला। पश्चात् ललितलीला करने के लिये, माया की ही सीता को सहचारिणी बनाया "पुनि माया सीता कर हरना"

अहो! माया सीता के हरण में निमित्त बनने वाला मृग भी माया का ही बना।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा।।

रावण भी माया यति का वेष धारण करके श्रीसीताजी के हरण करने के लिये आया।

यहाँ विलक्षणता यही है, माया मनुष्य श्रीराम (मायामनुष्यं हरिम्) माया की सीता, मायामृग, मायायति वेष में रावण इन सब मायामय परिस्थतियों के उपस्थित होने पर भी श्री जटायु चरित्र में माया की गंध तक नहीं आई ! क्योंकि वे भक्त हैं।

भगवान् लीला के लिये कदाचित् माया को स्वीकार लेते हैं पर भक्तजन तो मायापति श्रीराम के ही श्री चरणकमल के मकरंद के लिये लालायित रहते हैं।

श्री अयोध्याकाण्ड में श्रीबृहस्पतिजी इन्द्र के समक्ष इसी आशय को उपस्थित करते हैं।

मायापति सेवक सन माया। करिइत उलट परइ खगराया।

भगवद्भक्तों के पास माया फटकती तक नहीं।

भगति ही सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

किं बहुना, भक्तों के साथ बैठने वाले को भी माया स्पर्श नहीं करती।

विश्वमोहिनी पर आसक्त हुए देवर्षि नारद को श्रीनिवास विष्णु भगवान् ने माया से बचने के लिये कुरूप अर्थात् बंदर का मुख दिया। जिसे राजस्वयंवर में केवल भगवान् की माया राजकन्या ने ही देखा। वे न केवल नारद से चिढी अपितु नारद की पंक्ति में बैठने वालों की दिशा की ओर भूलकर भी नहीं देखा।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहु न बिलोकेउ भूली॥

आज जटायुजी ने रावण के द्वारा अपहृत आकाश मार्ग से जाती हुई भगवती सीताजी का करुण क्रन्दन सुना। यद्यपि इस क्रन्दन को समस्त देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर गण सुन रहे थे

सीताकर विलाप कर भारी। भये चराचर जीव दुखारी॥

पर रावण से लोहा लेने का किसी में साहस कहाँ था ? किसी को भारतीय आर्य ललना के शीलरक्षण के कर्तव्य का बोध कहाँ था ? केवल जटायु के ही वृद्ध शरीर की धमनियों में तरुण रक्त का प्रवाह खौल पड़ा।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥

उन्होंने सीताजी को पहचाना और अपने जीवनमरण की चिन्ता न करते हुए आर्य नारी के सम्मान के लिये समस्त देवताओं के विजेता सुषमापुंगव रावण के साथ युद्ध के लिये उद्यत होकर तरुण भारतीय जैसे स्वर में ऊँची ललकार लगाई।

सीते पुत्रि करहि-जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥

कुछ लोग अपनी अल्पज्ञतावश गोस्वामीजी पर नारीनिंदा का मिथ्या आरोप लगाते हैं पर नारीसम्मान का इतना उदात्त चित्रण विश्व के किसी भी साहित्य में क्या उपलब्ध है ?

मानसजी का शारीरिक दृष्टि से सबसे अपकृष्ट पात्र जटायु भगवती सीता के संरक्षण के लिये अपने प्राणों को भी संग्राम-बलि-वेदिका पर हँसते-हँसते चढ़ा देता है।

जब कि महाभारत का सबसे उत्कृष्ट-चरित्र-सम्पन्न भीष्म जिसे अष्टम वसु का अवतार भी कहा जाता है वह भी नारी के शील-रक्षण में सर्वथा असफल रहा।

पितामह भीष्म के सामने ही दुष्ट दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़ कर घसीटते हुए राजसभा में ले आया। उन्हीं की उपस्थिति में नीच दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करके अपने जंघे पर बिठाने का आदेश किया।

अतुलनीय शक्ति सम्पन्न होने पर भी पितामह भीष्म इस कुकृत्य से दुर्योधन को रोक तक नहीं पाये तथा निर्वाण के समय द्रौपदी के पूछने पर यही कह कर टाल दिया कि उस समय दुर्योधन के अन्न से मेरी बुद्धि दूषित हो गई थी।

पर मानस के एक पक्षी जटायु भी आर्य ललना के अपमान को नहीं सह सके और टूट पड़े त्रिलोकविजेता रावण पर। यही तो कारण है, पूर्वोक्त दोनों महापुरुषों के महाप्रयाणकालिन विषमता का।

दोनों ही समर में दलित हुए पर भीष्म अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों की शय्या पर विराजे तथा कर्तव्यनिष्ठ जटायु निर्वाणदायक परिपूर्ण परात्पर परमात्मा श्रीमद्राम की अंक शय्या पर समलंकृत हुए। बाणशय्या ने भीष्म को अपरिमित पीडा प्रदान की तथा प्रभु की गोदशय्या ने जटायु की समस्त पीडा ही हर ली।

भीष्म के अंग में अर्जुन के इतने बाण चुभे थे कि रथ से गिरने पर वे सीधे बाणों पर ही लटक गये। केवल सिर नीचे हो रहा था उसमें भी अर्जुन ने बाण वेध कर तकिया की भूमिका प्रस्तुत कर दी। महीनों तक शरीर में चुभे हुए बाणों के ऊपर शयन करने से भीष्म को कितना कष्ट हुआ होगा! यह तो सहृदयों से छिपा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपामय चितवन ने ही निर्वाण के कुछ क्षण पूर्व ही उनकी पीड़ा कथंचित् दूर की।

विशुद्धया धारणया हता शुभस्तदीक्षयैवाशुगतायुधव्यथः।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम्॥

(श्रीमद् भागवत–१।९।३१)

अर्थात् भीष्म पितामह को शस्त्रों की चोट से जो पीडा हो रही थी वह तो भगवान् के दर्शनमात्र से ही तुरन्त दूर हो गयी तथा भगवान् की विशुद्ध धारणा से उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़ने के समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों के वृत्ति-विलास को रोक दिया और बड़े प्रेम से भगवान् की स्तुति की।

पर जटायु की समस्त पीडा को एक ही क्षण में भवभीरभजन प्रभु ने दूर कर दिया।

भीष्म के निर्वाण काल में प्रभु उनके पास रथ से पधारे "रथेन सह चक्रिणा" पर जटायु के यहाँ प्रभु अपने चरणकमलों से चलकर गये। सीता का अन्वेषण तो एक बहाना था क्योंकि देवताओं ने उन्हें सीता की सुधि बता दी थी।

जब ही सब सिय सुधि सुरन्ह सुनाई।

पुनः प्रभु ने सीताजी के खोज का उपक्रम क्यों किया? केवल जटायु तक पहुँचने के लिये। अन्यथा देवताओं के द्वारा समाचार पाकर सीधे रावण के ऊपर आक्रमण करते—आगे परा गीधपति देखा।

प्रभु भीष्म के यहाँ जाकर पूज्य बने पर जटायु के यहाँ पुत्रभाव से पूजक भी।

भीष्म के बार-बार अनुरोध पर उन्हें केवल एक बार निहारा पर जटायु का सादर दर्शन एवं स्पर्शन भी किया।

भीष्म से स्वयं अर्घ्य पाया पर जटायु को अपने कमललोचन के आँसुओं का अर्घ्य दिया।

भीष्म से कोई वार्तालाप नहीं किया। उनके एकादश पुष्पिताग्रा स्तुति छंदों को सुनकर भी वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण मौन ही रहे। पर यहाँ तो बार बार "तात" शब्द से सम्बोधित कर जटायुजी को शरीर रखने के लिये अनुनय कर रहे हैं। "राम कहा तनु राखहु ताता"। भीष्म को केवल मोक्ष किंवा सायुज्य रूप मुक्ति दी, पर जटायुजी को तो सारूप्य आदि चारों मुक्तियाँ एवं अविरल भक्ति दी।

भीष्म की उत्तरक्रिया युधिष्ठिर से करवाई पर जटायु की उत्तरक्रिया भगवान् ने स्वयं अपने हाथों से सम्पन्न की।

इस प्रकार जटायुजी का चरित्र लौकिक दृष्टि से भी अत्यन्त उपादेय है। आर्यललनाललाम सीताजी की चीत्कार ने वृद्ध पक्षिराज जटायु को संग्रामझंझा के लिये झंझोरा और वे टूट पड़े रावण पर।

धावा क्रोधवंत खग कैसा। छूटे पवि पर्वत पर जैसा॥

तथा बोल पड़े।

रे रे दुष्ट ठाढ किन्ह होई। निर्भय चलेसि न जानेसि मोहि॥

रावण क्या तुमने आर्य भूमि को वीरों से विहीन समझ लिया है? जटायु उस समय मैनाक पर्वत एवं गरुड़ देव के समान लग रहे थे। रावण ने भी यही अनुमान किया।

आवत देखि कृतान्त समाना। पुनि दसकंधर कर अनुमाना॥
की मैनाक की खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥

निकट आने पर रावण ने वृद्ध जटायु को देखा और कहा कि यह तो मेरे कर तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

जाना जरठ जटायु एहा। मम कर तीरथ छांड़िहि देहा॥

जटायु ने प्रत्युत्तर में कहा रावण तेरा कर तीर्थ तो काकतीर्थ है। यदि मुझे शरीर छोड़ना ही होगा तो मैं सकल तीर्थों के आस्पद श्रीराघव के श्रीचरणतीर्थराज प्रयाग में देह का उत्सर्ग करूंगा।

तुम जानकी को छोड़कर सकुशल लौट जावो नहीं तो श्रीराघव के क्रोधानल में सपरिवार पतंगे की भाँति जल जाओगे।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि त अस होइहि बहु बाहू॥
राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसासन जोधा। तबहि गीध धावा करि क्रोधा॥

जटायु ने कहा ठीक है अब तुम दक्षिण अर्थात् काल दिशा की ओर जा रहे हो कालवशीभूत व्यक्ति कभी किसी का उत्तर नहीं दिया करता।

परम वृद्ध पक्षिराज ने रावण को विरथ कर दिया एवं तुमुल युद्ध में उसे अपने तीक्ष्ण चंचु प्रहार से मूर्छित किया।

"फिरत न बारहि बार पचार्यो"
चमरि चोंच चंगुल हय हति। रथ खंड खंड करिडार्यो॥

उन्होंने रावण के रथ को तोड़ दिया तथा अश्वों को अपने चोंच एवं चंगुल से मार डाला। रावण से तुमुल युद्ध किया।

चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भई मुरछा तेही॥

चोंचो से मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर दिया।

श्रीरामचरितमानस में चोंच से मारने की चर्चा दो बार आई है। दो पात्रो ने चोंच का प्रहार किया है। किन्तु दोनों की क्रिया में एकता होते हुए भी उद्देश्य तथा फल में अन्तर है। जैसे छुरे दोनों चलाते हैं डाक्टर और डाकू, पर डाक्टर का छुरा लोगों को प्राण देता है और डाकू का छूरा लोगों के प्राण हर लेता है।

ठीक उसी प्रकार श्रीरामचरितमानस में जयन्त ने भी चोंच चलाई और जटायु ने भी। जैसे डाक्टर और डाकू दोनों का आद्य अक्षर "ड" है, वैसे ही जटायु और जयन्त दोनों का प्रथम अक्षर "ज" है।

जयन्त ने चोंच मारी किशोरी जी के मानभंग के लिये, किन्तु जटायुजी ने रावण को चोंच मारी किशोरीजी के मानरक्षण के लिये।

चोंचन्ह मारी बिदारेसि तेही। दण्ड एक भई मूरछा तेही॥

जटायुजी ने चोंचों के प्रहार से रावण के देह को इतना विदीर्ण किया कि एक दण्ड तक उसे मूरछा रही।

तब सक्रोध निशिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥

रावण ने क्रुद्ध होकर परम कराल कृपाण निकाला और जटायु के पंख काट दिये।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम कर अद्‌भुत करनी॥

क्योंकि वह कृपा कृपण था। श्रीराम एवं रावण का इतना ही तो भेद है कि उसके पास कृपाण है, जिसका अर्थ होता है।

कृपां नाशयति किं वा कृपां दूरं नयति इति कृपाणः॥

अर्थात् जो कृपा को नष्ट कर दे अथवा जो कृपा को दूर कर देता है उसे कृपाण कहते हैं।

इसीलिये श्री मानस के राघव कभी कृपाण हाथ में नहीं लेते। उन्हें आशंका रहती है कहीं ये मेरी कृपा को मुझसे दूर न कर दे।

राज्याभिषेक के समय भी औपचारिकता में जब कृपाण की आवश्यकता पड़ी तब उसे अंगद से सम्हलवाया।

भरतादि अनुज विभीषणांगद हनुमदादि समेत जे।
गहिं छत्र चामर व्यजन धनु असि चरम शक्ति विराजते॥

अतः रावण के कृपाण से घायल होने पर भी जटायुजी राघव की कृपावारिधारा से अप्लावित हुए। रावण के द्वारा अब जटायु पक्षहीन कर दिये गये। जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े।

जटायुजी का जीवन गीताजी के उस श्लोक से मिलता है कि "तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च" भगवान् कहते है कि सम्पूर्ण कालों में मेरा अनुस्मरण भी करो और युद्ध भी करो।

जटायु तन से युद्ध करते हैं ऐसा घोर संग्राम कि जिसमें राक्षसेन्द्र रावण को भी एक बार लोहा मानना पड़ा और मन से राघवेन्द्र का स्मरण कर रहे हैं। "सुमिरि राम कर अद्‌भुत करनी॥"

जटायुजी का कर्म भगवन्निमित्तक कर्म है। भगवत् समर्पित कर्म है! यथाः—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय, मुक्तसंगः समाचार ॥ (गीता ३-९)

गीता में भगवान् कहते हैं हे कौन्तेय! यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के अलावा अन्य कर्म मनुष्य को बंधन देते हैं। अतः तुम भी फलासक्ति को छोड़ कर, भगवान् के लिये ही कर्म करो।

जटायुजी के जीवन में कोई आसक्ति नहीं है। अपितु उनके जीवन में श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द के प्रति नवनवायमान अनुरक्ति है।

अतः प्रथम बार जटायुजी को श्रीराघवेन्द्र का दर्शन हुआ, वहाँ गोस्वामीजी से पूछा गया कि आज जटायुजी के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई। तो उन्होंने कहा!

गीधराज सैं भेट भइ, बहु विधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परनगृह छाइ॥

भगवान् श्री राघवेन्द्र के दर्शनमात्र से जटायुजी के हृदय-तड़ाग में प्रीतिकमलिनी की कलिका विकसित हो उठी। अतः कर्म जब प्रीति से समन्वित हो जाता है तभी उसे भक्ति कहा जाता है! जटायुजी ने अपने कर्म भगवान् को समर्पित कर दिये। क्योंकि अपने कर्म से ही भगवान् को पूजा करके व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त करता है।

"स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः" (गीता १८-६)

आज जटायु पक्षी होकर भी महामानवोचित आचरण कर रहे हैं। अतः गोस्वामीजी को दोहावली में कहना पड़ा कि

"लहेउ न काहु आजुलगि, गीधराज सी मीच।"

जटायु जैसी मृत्यु तो आजतक किसी को भी नहीं मिली।

भगवान् आनन्दकंदकी कृपा से जटायु को वह वस्तु प्राप्त हो गई है, जिससे श्रीराघवेन्द्रजी की भक्ति प्राप्त होती है। काकभुशुण्डजी गरुड़जी से चर्चा करते हुए कहते हैं कि,

रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥
जाने बिनु न होइ परतीति। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

अर्थात् भगवान् की कृपा से ही उनके प्रभाव का ज्ञान होता है। जटायुजी के ऊपर भगवान् की कृपा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अत: उन्होंने रामजी के प्रभाव को जान लिया! वे रावण से कहते हैं।

राम रोष पावक अति घोरा। होइ हैं सलभ सकल कुल तोरा॥

हे रावण! तू रामजी के प्रभाव को नहीं जानता। उनके क्रोधानल में तेरा सम्पूर्ण कुल शलभ की भाँति जल जायेगा। अत: उसी प्रभाव ज्ञान से उनमें दृढ़ विश्वास आया और विश्वास से प्रीति बढ़ ही जाती है। इसलिये कहा कि "बहु विधि प्रीति बढ़ाई" प्रीति के पश्चात् भक्ति दृढ़ हो ही जाती है।

अब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि सगुणोपासक दृढ़ प्रीति युक्त भक्त को भगवान् दर्शन दे ही देते है तो गीधराज को भी दर्शन दे देते। फिर इतनी बड़ी भूमिका बनाने की क्या आवश्यकता थी? जिसमें गीधराज का रावण के साथ संग्राम हो। रावण के द्वारा उनके पक्ष कांटे जायें। इसके पश्चात् भगवान् राम उन्हें दर्शन देकर मुक्ति प्रदान करें।

इसका प्रथम समाधान तो यह है कि भगवान् का यह स्वभाव है वे कहते हैं कि

"यस्याऽहमनुगृह्णामि तस्य सर्वं हराम्यहम्॥"

जिसके ऊपर मैं अनुग्रह करता हूँ उसका सब कुछ हर लेता हूँ। **"परम अकिंचन** प्रिय हरि केरे" और वास्तव में यह सत्य भी है कि जिसके पास कुछ नहीं होता वही भगवान् को प्यार करता है।

गीधराज पक्षी है। जिसके पास और कुछ नहीं होता केवल पक्ष ही जिनका सर्वस्व है। "पक्ष: अस्ति अस्मिन् अस्य वा इति पक्षी॥

अत: भगवान् ने सोचा कि इनके पास अभी पक्ष है। जब तक पक्ष है तब तक मैं इतना प्रेम नहीं कर सकता। अत: रावण के द्वारा इनके पक्ष कटवाकर लोकसंग्रह की दृष्टि से मैं इन्हें निष्पक्ष बना दूँ। जब ये निष्पक्ष हो जायेंगे तब मैं इनसे पक्षपात करूंगा।

अब जटायुजी के पास कुछ भी नहीं रह गया। उडने का सामर्थ्य भी नहीं रहा। ये खग हैं। खं आकाशं गच्छति स खग:। अर्थात्

जो आकाश में उड़ता है वह खग है। वेद का अन्तिम सिद्धान्त भी यह है "खं ब्रह्म" याने खग वही है, जो ब्रह्म के पास स्वयं अपने सिद्धान्त से जाता है। अतः ज्ञानी यह खग है। जटायुजी खग हैं इससे सिद्ध हुआ कि ये ज्ञानी हैं और ज्ञानी के पास एक अपना अद्वैत का पक्ष होता है। भगवान् ने सोचा कि इनका ज्ञानरूपी पक्ष भी कांटकर फेंक दिया जाय जिससे ये निष्पक्ष हो जायें!

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम कर अद्भुत करनी॥

शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार ज्ञान को आकाश माना गया है और भक्ति को पृथ्वी।

ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥

वहाँ मन के लिये सहारा नहीं है। जैसे आकाश को कोई सहारा नहीं होता वैसे ज्ञान पक्ष में कोई सहारा नहीं होता। भक्ति पृथ्वी है। यथा:—

जिमि बिनु थल जल रहो न सकाई। कोटि भाँति कोउ करैं उपाई॥
यथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकैं हरि भगति बिहाई॥

जिस प्रकार जल स्थल के बिना रह नहीं सकता उसी प्रकार भक्ति के बिना मुक्ति रह नहीं सकती।

अर्थात् मुक्ति जल है और भक्ति स्थल है। जल आकाश से आता है। उसी प्रकार मुक्ति रूप जल ज्ञानरूप आकाश में प्राप्त होता है। किन्तु मुक्ति रूप जल ज्ञान रूप आकाश में स्थिर नहीं रह सकता। जल का गन्तव्य है पृथ्वी। उसी प्रकार मुक्ति रूप जल का गन्तव्य जल है, पृथ्वी रूप भक्ति। अर्थात् जब तक पृथ्वी रूप भक्ति नहीं होगी तब तक मुक्ति रूप जल स्थिर नहीं रह सकेगा।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

आकाश से गिरा हुआ जल जैसे सागर के प्रति जाता है वैसे ही सर्व देवों को किया हुआ नमस्कार केशव को प्राप्त होता है।

आकाश से गिरते हुए जल को पीया जाय तो संभवतः बीमारी भी आ सकती है। किन्तु वही जल जब पृथ्वी में टिक जाता है गर्मी के मौसम में भक्तिरूप पृथ्वी उसे हजारों फीट अन्दर छिपाये रखती

है। उसे खोद कर निकालने से वह अत्यन्त शीतलता प्रदान करता है। "कूपोदकं वटच्छाया"

भाव यह कि जैसे मुक्ति रूप जल ज्ञान रूप आकाश से भी प्राप्त है किन्तु पृथ्वी का जल आकाश की अपेक्षा बहुत मधुर होता है। उसी प्रकार से भक्ति के द्वारा प्राप्त मुक्ति, ज्ञान के द्वारा प्राप्त मुक्ति की अपेक्षा अधिक मधुर होती है।

इस पर मधुसूदन सरस्वती की, जो अद्वैतवाद के बहुत बड़े समर्थक है वे कहते हैं कि

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु कोषान् निगीर्णमनलो यथा॥

निमित्त शून्य याने स्वार्थशून्य भक्ति, मुक्ति से करोड़ों गुनी श्रेष्ठ है। क्योंकि जैसे ज्ञान के द्वारा पांचों कोष नष्ट किये जाते हैं वैसे ही भक्ति को प्राप्त करने के बाद जीव के पांचों कोष **अन्नमय**-कोष, मनोमयकोष, प्राणमयकोष विज्ञानमयकोष तथा **आनन्दमय**-कोष नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानी को तो आनन्दमयकोष नष्ट करने में बड़ी कठिनता होती है। ज्ञानी आनन्दमात्र में डूबता है किन्तु भक्त के यहाँ तो सब नष्ट हो जाता है। यथा:—

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुखगन॥

भरतजी के हृदय में अनिमित्त भागवती भक्ति है। श्रीचित्रकूट में ज्यों श्री भरतभद्र, श्रीराघवेन्द्र के मंगलमय आश्रम को देखते हैं, त्यों ही उनके पांचों कोष समाप्त हो जाते हैं।

प्रत्येक विशेषणों को ध्यान में लेने से स्पष्ट होगा "सानुज सखा समेत **मगन मन**" मन मग्न हो गया। इसका भाव यह कि मनोमय कोष नष्ट हो गया। "बिसरे हरष" हर्ष याने आनन्द। आनन्दमय कोष नष्ट हुआ। इसके साथ ही अन्नमय कोष नष्ट हुआ क्योंकि अन्न से ही हर्ष की अनुभूति होती है। हर्ष की विस्मृति हो गई। शोक समाप्त हुआ। शोक तब समाप्त हुआ जब प्राणमय कोष क्षण भर में जल गया। और "सुख दुख गन" याने विज्ञानमय कोष भी नष्ट हो गया।

भोजन किये हुए भुक्त पदार्थों को जठराग्नि पचा देती है उसी प्रकार भगवान् की भक्ति जीव के सम्पूर्ण दोषों को तथा सम्पूर्ण कोषों को पचा देती है।

भोजन करिय तृपित हित लागी। जिमि सो असन पचवइ जठरागी।।
अस हरि भगति सुलभ सुखदाई। को अस मूढ न जाहि सुहाई।।

इसी प्रकार जटायु के ज्ञान वैराग्यात्मक दोनों पक्ष रावण द्वारा काट दिये गये हैं! अब उनके पास कुछ नहीं रहा!

यहाँ एक और बात ध्यातव्य है। यह नहीं मानना चाहिये कि ज्ञानी, भजन नहीं करता! ज्ञानी भी भजन करता है। गीताजी में कहा है कि,

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।

चार प्रकार के लोग मेरी भक्ति करते हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी! अर्थात् ज्ञानी भी भजन करता है मानसजी में भी प्रमाण है।

राम भगत जग चारि प्रकारा। चारिउ सुकृती अनघ उदारा।।
चहूँ चतुर चहु नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहि विशेष पिआरा।।

अतएव निश्चित हुआ कि ज्ञानी भी भगवान् का भजन करता है। भगवान् गीताजी में कहते हैं।

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" ज्ञानी तो मानो मेरी आत्मा ही है! यहाँ "एव" का खण्ड इस प्रकार है।

"ज्ञानी तु आत्मा आ इव" ऐसी व्युत्पत्ति होगी!

मनमाने गीताजी के अर्थ भी नहीं लगाये जा सकते। आचार्यों के चरणों में बैठकर जब तक सिद्धान्तों का अनुशीलन नहीं होता तब तक वे स्पष्ट नहीं होते!

"ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" में "आत्मा एव" ऐसा खंड नहीं है!" ज्ञानी तु आत्मा आ इव" इसका अर्थ है कि ज्ञानी निश्चित ही मेरी आत्मा के समान है! आत्मा के समान आदरणीय है प्रिय है! इसलिये कहा कि

ज्ञानी प्रभुहि विशेष पिआरा।।

"आत्मवत् प्रियः ज्ञानी इति तात्पर्यम्" ज्ञानी भगवान् को अपने समान प्रिय है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिर्विशिष्यते ॥

ज्ञानी भगवान् से कुछ नहीं चाहता।

न तो उसे अर्थ चाहिये न धर्म, न काम और न तो उसे मोक्ष चाहिये ! क्योंकि ज्ञानी अर्थ, धर्म, काम से ऊपर उठ चुका है। और ज्ञान के बल पर मोक्ष तो उसे बिलकुल करतलगत है। अतः ज्ञानी को चाहिये केवल एक भक्ति। "एका भक्तिः यस्य"

इस बात को स्पष्ट करने के लिये एक सैद्धान्तिक दृष्टान्त से समझा जा सकता है।

भजन की परिस्थिति के दो पक्ष हैं। दोनों में ही शास्त्रकारों ने दाम्पत्य जीवन का उदाहरण दिया है।

प्रियतमहृदये वा खेलतु प्रेमरीत्या,
पदयुगपरिचर्यां प्रेयसी वा विधत्ताम्।
विहरतु विदितार्थो निर्विकल्पे समाधौ,
ननु भजनविधौ वा तुल्यमेतत् द्वयं स्यात् ॥

जिस प्रकार प्रेम में मग्न होकर पत्नी अपने पति के उरःस्थल पर विराजमान होती है, उसी प्रकार भगवान् के तत्त्व को जान कर भावुकजन भगवान् में प्रवेश करते हैं। और कभी-कभी दासभाव में आकर पत्नी, पति के चरणकमल को दबाती है उसी प्रकार भावुक भक्त कहते हैं कि हम भगवान् में नहीं जायेंगे किन्तु यदि हममें इतनी भावना होगी तो भगवान् ही मेरे में आ जायेंगे।

तात्पर्य यह है कि पत्नी अपने पति के साथ दो प्रकार का वर्ताव करती है।

प्रथम पक्ष में जब पत्नी का पति से ऐक्य हो जाता है तब वह अपने पति के हृदय पर विराजमान होकर खेलती है ! और दूसरे पक्ष में वह प्रेम में आकर अपने पति के दोनों चरणकमलों को दबाती है।

ठीक उसी प्रकार अद्वैतवादी भी भगवान् का सेवी है और

भक्त भी भगवान् का सेवी है परन्तु दोनों में अंतर है। भगवान् और भक्त में ऐक्य हो जाने पर, भक्त भी भगवान् का सेव्य जैसा हो जाता है। और वह पति के हृदय पर खेलती हुई पत्नी की भाँति, भगवान् के हृदय पर खेलता है यह है अद्वैतवाद ! और पति के चरणों की सेवा करती हुई पत्नी की भाँति भावुक भक्त भगवान् के चरणकमल को ही अपने हृदय पर ले आकर मंगलमय उनका संवाहन करते हैं।

यह है भक्ति की परिभाषा। भजन दोनों करते हैं। एक हृदय पर विराजमान पत्नी की भाँति और एक चरणों में बैठने वाली वल्लभा की भाँति। यहाँ भावुक जनों को विचार करना होगा कि इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है ?

पति के हृदय पर चढ़कर खेलना यह राधाजी का पक्ष है यह अद्वैतवाद है। किन्तु यदि सीताजी के पक्ष से पूछा जाय तो सीताजी कहती हैं कि पति की छाती पर विराजमान होकर खेलने में पत्नी को रस तो आता है किन्तु उसे यह विचार भी सताता है कि हमारे भार से कहीं मेरे प्राणधन को कष्ट न हो जाय। अतः अद्वैतवाद में अद्वैतवादी का अपना सुख रहता है। वहाँ परमात्मा के सुख की चर्चा नहीं होती पर भक्तों के यहाँ निजी सुख को महत्त्व नहीं है। अतः चरण सेवा से वे परमात्मा को सुखी करना चाहते हैं। सीताजी ने कहा:—

सम महि तरु तृन पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

अद्वैतवाद में "सोऽहम्" न्यायतः पारमार्थिक नहीं है। आवेशमात्र है ! जैसे श्रीकृष्ण विरह में श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते गोपियाँ कहने लगीं कि हम ही श्रीकृष्ण हैं।

आसावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका। न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः॥
(श्रीमद् भागवत् १०-३०-३)

तो क्या वे श्रीकृष्ण थोड़े ही हो गईं। यह तो एक आवेश था। किन्तु सीताजी कहती हैं—

तो भगवान सकल उर वासी। करिहहिं मोहिं रघुबर की दासी॥

अद्वैतवाद की परंपरा और विशिष्टाद्वैतवाद की परंपरा दोनों ही नारायण से चली हैं ! क्योंकि नारायण के यहाँ ये दोनों

परिस्थितियाँ हैं ! लक्ष्मीजी के दोनों पक्ष हैं ! कभी-कभी वे प्रेम में मग्न होकर भगवान् के हृदय पर विराजती हैं

श्रीयुत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्याम् ।
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।।

किन्तु कभी कभी उन्हें भय हो जाता है कि जो निरन्तर हृदय पर चढ़ा रहता है उसे कभी न कभी हटा ही दिया जाता है । जैसे हृदय पर रहने वाली मालिका को । उसी प्रकार ज्ञानी का पतन ठीक इसी तरह होता है । नारदजी जैसे धुरन्धर ज्ञानी भी एक ही बार विश्वमोहिनी के हस्तकमल को देखकर अपना जप तप सब भूल गये ।

अतः लक्ष्मीजी भी हृदय के ऊपर से पतन के भय से चरण में रहना चाहती हैं । भगवान् ने कहा कि चरण में अब स्थान नहीं है, क्यों कि वह स्थान तुलसी लिये है । तब लक्ष्मी ने कहा कि महाराज ! तुलसी तो आपके पंजे में रहा करती है, मैं आपके चरण के तलवें में रहा करूंगी ! लक्ष्मीजी की दोनों स्थितियाँ हैं । किन्तु सीताजी बहुत चतुर हैं । उन्होंने सोचा कि हृदय से हटकर चरण में आना ही है तो क्यों न प्रथम से ही चरणों में ही अपना स्थान लिया जाय । अतः कहती हैं कि

तन मन बचन मोर पन साँचा । रघुपति पदसरोज चित राँचा ।।

सीताजी चरणसेवा में ही अपना, पक्ष रखती हैं । इससे लाभ यह हुआ कि श्रीरामजी स्वयं उनके हृदय में आ गये ।

तेहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है ।

अब रामजी कभी भी इनको हटा नहीं सकेंगे !

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाइ । कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ।।

यहाँ एक पक्ष पर और ध्यान दिया जाय ! जो पत्नी स्वाधीन भर्तृका होती है, उसे कभी न कभी मान हो जाता है ! कहीं कहीं मान उचित है किन्तु भगवान् के यहाँ मान बिलकुल उचित नहीं है ।

"बैठि पलोटत राधिका पायन" इस पक्ष पर रसिकों को बहुत आनंद आता है । कि व्रजेन्द्रचन्द्र श्रीकृष्ण आनंदकन्द परमानंद सर्व सर्वेश्वर राधिकारानी के चरणारविन्द को दबा रहे हैं । यह अद्वैतवाद है क्योंकि अद्वैतवाद में व्यक्ति स्वामी बन जाता है !

अतः राधाजी स्वामिनी बन गईं और भगवान् सेवक। रसिकों को यह पक्ष अच्छा तो लगा किन्तु आगे चल कर राधाजी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इतना बड़ा सम्मान पाने के पश्चात् रासलीला में जब सभी गोपियों को छोड़कर राधारानी को लेकर प्रभु चले तब थोड़ी दूर जाने के पश्चात् राधाजी को भी अहंकार हो गया!

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥

(भागवत १०।३०।३८)

राधाजी के मन में दृप्ता याने गर्व हो गया कि अब मेरे समान कोई है ही नहीं। तब उन्होंने कहा कि अब मैं अधिक नहीं चल सकती। जहाँ तुम्हारा मन हो वहाँ मुझे ले चलो।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा तो मेरे कंधे पर चढ़ जाओ। राधाजी कंधे पर चढ़ने के लिये कदम्ब की डाल पर चढ़ीं और कंधे पर चढ़ने गईं उसी क्षण भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। कितना कष्ट हुआ राधाजी को! किन्तु भगवान् सेवक से कभी भी अलग नहीं होते।

अतः सीताहरण के पश्चात् यह प्रश्न हुआ कि सीताजी रामजी से अलग हो गई हैं?

राघवेन्द्रजी ने कहा कि नहीं सीताजी आश्रम में नहीं है किन्तु मेरे मन में हैं।

निसिचर निकर फिरहि बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं॥
गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न॥

जटायुजी खग हैं। खग आकाश में उड़ता है। कितना ही चिड़िया उड़े आकाश, किन्तु चारा है धरती के पास॥

ज्ञानी चाहे कितनी भी उड़ान शून्याकाश रूप ज्ञान में करें पर अन्त में आकर उसे भजन करना ही पड़ता है।

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी। धर्म निरत पंडित विज्ञानी॥
तरहिं न बिनु सेये मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामि॥

अतः निश्चित हुआ कि ज्ञानी भी भगवान् को भजता है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

चार प्रकार के लोग भगवान् को भजते हैं । उसके उदाहरण इस प्रकार हैं ।

कमल कोक मधुकर खग नाना । हरषे सकल निसा अवसाना ।।
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे । होइहैं टूटे धनुष सुखारे ।।

कमल, कोक, भँवरा और पक्षी ये चारों सूर्य को भजते हैं । कमल आर्त है, वह सोचता है कि सूर्य के आने से मैं विकसित हो जाऊँगा । कोक जिज्ञासु है, वह चाहता है कि सूर्योदय होने पर कोकी रूपी ज्ञान की वृत्ति मुझे मिल जायेगी । मधुकर अर्थार्थी है, वह जानता है कि सूर्य नारायण के आते ही मुझे मकरंद मिलेगा । किन्तु खग ज्ञानी है, वह कुछ भी नहीं चाहता । वह तो कहता है कि सूर्यदेव के आने पर मैं अपना घोंसला छोड़कर निर्मल आकाश में विहार करूंगा ।

वैसे ही ज्ञानी भक्त कहता है कि जब सूर्यकुल के सूर्य श्रीमद् राघव का हमारे हृदय में प्रकाश होगा, तब संसार रूप घोंसले को छोड़कर हम निर्मल ज्ञानरूप आकाश में उड़ेंगे !

अर्थात् ज्ञानी की कोटि में खग को कहा गया । यहाँ खग जटायु ज्ञानी है, और उनके दो पक्ष हैं, ज्ञान और वैराग्य ! इन्हीं दो पक्षों से वे आकाश में उड़ना चाहते हैं । पर भगवान् ने यह सोचा कि कितना ही वे उड़ना चाहें किन्तु रात्रि में तो इन्हें घोंसले में आना ही पड़ेगा ! भाव यह है कि ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश में व्यक्ति भले ही आकाश में उड़ता जाय किन्तु जब भक्ति रूपिणी रात्रि आयेगी तब अन्ततोगत्वा उसे अपने घोंसले में आना ही पड़ता है । अतः भगवान् की इच्छा थी तभी ऐसा हो गया जटायु के पंख कट गये ।

काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि रामकर अद्भुत करनी ।।

दूसरा भाव यह है कि शास्त्रों में सुना है कि "निर्बल के बल-राम" प्रभु भक्ति माता का चमत्कार अधिक रूप में दिखाना चाहते थे भगवान् ने सोचा कि जटायु भी भक्त कोटि में है पर लोक संग्रहार्थ पहले इनके जीवन में निर्बल की भूमिका भी दिखा देनी चाहिये । पक्षी का बल पक्ष ही है । कहा पक्ष को भी रावण के

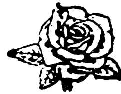
बल से कटवा देते हैं एकदम निर्बल होकर गिर जायेंगे तब मैं इनका बल बनूंगा ! इसलिये भगवान् की लीला शक्ति ने ही ऐसा किया। यदि भगवान् न चाहते तो क्या रावण जटायु के पंख काट सकता था ?

तीसरा भाव यह है कि ज्ञानी को शरीर पर आस्था नहीं होती। किन्तु यह शरीर भजन करने का साधन है। यदि भजन करने में उपयोगी है तो ठीक है। अतः पंख कटने से उनके जीवन में ऐसी विडम्बनायें उत्पन्न कीं कि जिससे उनके हृदय में प्रेम प्रकट हो जाय तथा शरीर पर अनास्था हो जाय। प्रेम बड़ा गोपनीय होता है। दुःख में ही उसका प्राकट्य होता है। वियोग में ही वह छलकता है।

भगवान् ने एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि व्यक्ति कितना भी साधन सम्पन्न हो जाय पर जब तक किशोरीजी की कृपा नहीं होती तब तक वह राघवेन्द्रजी को नहीं प्राप्त कर सकता।

इसीलिये भगवान् ने ऐसी व्यवस्था बनाई कि जिससे किशोरी जी का अपमान न सह सकने के कारण किशोरीजी की रक्षा के लिये ये अपना शरीर छोड़ दे तब मुझे भी कृपा करने में शास्त्रीय बल मिल जायेगा। श्रीराघवेन्द्रजी ने गीधराज पर कृपा बरसाई।

इति शम्



।। श्रीराम: शरणं मम ।।

तृतीय प्रसून

गुर्वी प्रकुर्वं निजपदकमलां मेखलां यज्ञसूत्रम् ।
विभ्राण: शिक्षमाण: सनियमनिगमान् चापवेदं वसिष्ठात्
अब्दश्यामो हि रामो विहितजनमन:सद्मवासो वसान: ।
पातु श्रीरामचन्द्रस्त्वचमथ [illegible] रौरवीं रौरवान् माम् ।।

उत्तीर्णसिन्धु [illegible]कबन्धुम्,
दीनैकसौख्यं [illegible]कीर्तिम् ।
जगच्छरण्यं विदुषां वरेण्यम्,
वन्दामहे वानरवारणेन्द्रम् ।।

संग्रामे भूरिधामा सुरपतिजयिनं योजयित्वा श्रमेण ।
सीतारक्षाप्रयासग्लपितरिपुमदो रक्षसा छिन्नपक्ष: ।
भूमेर्भू त्वावतंशो निजहृदि कलयन् हंसवंशावतंसम् ।
स्वैरभ्राजां वैजयन्तीजनितजययशा: कोऽपि जज्ञे जटायु: ।।

श्रीमद् अनन्तगुणगणनिलय, कौशल्यानंदवर्धन, दशरथनन्दन, सरयूतरलतरंगविच्छालितपादारविन्द, निस्यन्द प्रेममकरन्द, विलुब्ध-निखिलमुनिमनोमिलिन्दवृन्दवृन्दारकगण जेगीयमान, गुणगौरव, सतत नवनव, राजाधिराज महाराज मर्यादा पुरुषोत्तम परात्पर परिपूर्णतम परमात्मा श्रीमद् राघवेन्द्र रामभद्रजू की भुवनपावनी अहैतुकी कृपासे अनायासेन समुपलब्ध श्रीरामकथामन्दाकिनी में मज्जन करके अब हम अपने तीनों तापों को शान्त करने का प्रयास करें ।

कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।
रामकाज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड़भागी ।।

श्री अंगद मनमें विचार करके यह निर्णय दे रहे हैं कि त्रिलोक में जटायु जैसा कोई धन्य नहीं है । तात्पर्य यह है कि जटायु को जैसा धन प्राप्त हुआ, वह धन आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ ! उस धन की प्राप्ति में जटायुजी को जितना आमोद हुआ, जितना प्रमोद हुआ, ऐसा किसी को नहीं हो सका ।

रावण के द्वारा घायल किये जाने पर जटायु तड़प रहे हैं, छटपटा रहे हैं। पंख कट चुके हैं वे असहाय दीन हो चुके हैं। पहले वे दानी थे अब दीन हुए। अपने जीवन का दान करके अब दीन हो गये हैं। अब वे निरालम्ब आकाश में भ्रमण करने की क्षमता नहीं रखते। अब उनकी स्थिति भागवतजी के श्लोकचतुष्टयीवत हो गई है।

वृत्रासुर भगवान् से प्रार्थना करता है कि—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेवं व्युषितं विषण्णा। मनोरविन्दा क्षदिदृक्षते त्वाम्॥

वृत्रासुर कहता है कि हे कमललोचन, अशरणशरण, करुणा-निधान, भक्तवत्सल, प्रपन्नपारिजात, प्रभो! आपको निहारने के लिये मेरा मन तड़फड़ा रहा है। कैसे तड़फड़ा रहा है? तीन उदाहरण देते हैं।

जैसे पंख से हीन पक्षी का छोटा सा बच्चा, अपनी माँ के लिये छटपटाता है। उसी प्रकार हे दीनबन्धो! आपको देखने के लिये मेरा मन छटपटा रहा है। दूसरा उदाहरण देकर कहते हैं कि—जैसे गाय का भूखा बछड़ा अपनी माँ के दूध के लिये चिल्ला-चिल्ला कर तड़फड़ा रहा हो इसी तरह हे सरकार! आपकी रूपमाधुरी का पान करने के लिये मेरा मन चीत्कार कर रहा है।

तीसरा उदाहरण देते हैं। जैसे विदेश गये हुए अपने प्राणधन पति के लिये कुलांगना कान्ता कोमल कल्पना की शय्या सजाकर अपने प्रियतम जीवन सर्वस्व के लिये तड़फड़ाती है उसी प्रकार प्रभो! आपके दर्शन के लिये मेरा मन तड़पता रहा है।

भगवान् आनन्दकंद की प्रतीक्षा ही जीवन का सर्वस्व है।

निर्गुण और सुगुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। निर्गुण का अर्थ यह नहीं होता कि वे गुणों से रहित है। परमात्मा में सभी गुण नित्य हैं, शाश्वत हैं, और समवेत हैं। निर्गुण का अर्थ है कि "निरपेक्षाः गुणाः यस्य" जो गुणों की अपेक्षा नहीं करता। प्रभु किसी भी गुणों की अपेक्षा नहीं करते बल्कि गुण ही प्रभु की अपेक्षा करते हैं। यदि भगवान् के पास वे न आयें तो उन्हीं गुणों को दोष माना जायेगा। जिसको कौशल्यानन्दवर्धन, श्यामसुन्दर, कोशलेन्द्र

सरकार स्वीकारते हैं उसको गुण कहा जाता है। अतः गुण ये सोचते हैं कि जब तक हमें प्रभु नहीं स्वीकारेंगे गुणत्व हम में आयेगा ही नहीं। अतः अपने को लोगों के समक्ष गुणरूप में प्रस्तुत करने के लिये, गुण स्वयं भगवान् को चाहते हैं।

जैसे श्रीमद् रामचन्द्रजी के विवाह के प्रसंग में बारह सगुन नाच पड़े। क्योंकि सद्गुणों ने सोचा कि जो स्वयं मंगलभवन अमंगलहारी ही है। उनके विवाह में कोई अमंगल होना नहीं हैं। यदि हम यहाँ आयेंगे तो लोग हमें सगुन मानेंगे, नहीं तो अपसगुन हो जायेंगे।

राम सरिस बर दुलहिनी सीता। समधि दसरथ जनक पुनीता।
सुनि अस ब्याह सगुनसब नाचे। अब कीन्हें बिरंचि हम साचें।

सगुन अपने को सगुण का प्रमाणपत्र दिलाने के लिये प्रभु के विवाह में आते हैं। इसी प्रकार निर्गुण का अर्थ यह हुआ कि जिन्हें गुणों की अपेक्षा नहीं।

भगवान् को गुणों की आभूषणों की कोई अपेक्षा नहीं होती। बल्कि आभूषणों को पाकर भगवान् की शोभा घट जाती है। राज्याभिषेक के समय ठाकुरजी बहुत सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से सज्जित थे। गोस्वामीजी से पूछा गया कि कैसे लग रहे हैं आज सरकार ? तो उन्होंने कहा—

श्री सहित दिनकर वंश भूषण, काम बहु छबि सोहई।

बहुत से काम लज्जित हो रहे हैं। भक्तों ने पूछा कि कितने काम लज्जित हो रहे हैं निर्णय करके कहिये। गोस्वामीजी ने कहा कि क्या कहूँ ? इन आभूषणों ने ठाकुरजी की सुन्दरता को ढँक दिया है। अतः बोले कि—

करि मज्जन प्रभु भूषण साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥

भूषणों से युक्त प्रभु को देखकर सैकड़ों काम लज्जित हो गये। उसके पहले वनमार्ग में श्रीराघवेन्द्र ने केवल फूलों का शृङ्गार किया था। वल्कल वस्त्र, शीश पर जटा, ऐसी स्थिति में पूछा गया कि आज प्रभु कैसे लग रहे हैं, तो कहते हैं—

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे॥

कि कोटि-कोटि काम लज्जित हो रहे हैं। फिर भी फूलों के श्रृङ्गार से थोड़ी शोभा ढँकी हुई है। तब पूछा गया कि उन्मुक्त शोभा कब होती है ? तो गोस्वामीजी ने कहा, बाल्यकाल में जब ठाकुर कुछ भी नहीं पहनते तब बड़े सुन्दर लगते हैं। यथा—

तन की द्युति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरे।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरे।।

एक बार भगवती कौशल्याजी ने राघव को स्नान कराया, गोद में लिया, दूध पिलाया, सोचा इतना सुन्दर श्रृंगार कर दूं। कपड़े और गहने ले आऊँ। तब तक हमारा छगन मगन भाग चला और अवध की गलियों में जाकर धूल में लौटने लगा। कौशल्याजी को गुस्सा आया। कौशल्याजी ने कहा इतने सुन्दर सुन्दर गहने पहनाने का हमने उपक्रम किया तब तक आके तुम धूल में लौट पड़े। भगवान् ने कहा मां! जहाँ संतजन आकर अपने चरणों की धूल गिराते हैं वहीं जाकर लौटता हूँ। और अपने शरीर को पवित्र करता हूँ।

माँ और चिढ़ गई। कहा, तुमने ऐसा कौन सा पाप किया है जो तुम्हे पवित्र होने को इच्छा हुई ?

राघव ने कहा माँ! मैंने तो कोई पाप नहीं किया पर मैं अपने भक्तों का पाप अपने सिर पर ले लेता हूँ उसी पाप को धोने के लिये मैं संतों की चरणधूलि में लोट लेता हूँ।

आज राघव धूल में लौटने लगे। उनके मंजुल मंजुल, लोल लोल कपोलों पर रोलम्बायमान, सुन्दर सुन्दर, कुटिल कुटिल, मेचक मेचक-कुंचित कुंचित, मंजुल मंजुल, अत्यन्त सौन्दर्यामृत प्रवर्षणशील कोटि कोटि नील नील कादम्बिनी को लज्जित करने वाली सुन्दर अलकावलियाँ बिखराती हुईं, भ्रमर निकुरम्ब पंक्तियों की भांति ठाकुरजी की गुलाबी गुलाबी कपोलों को चूमती हैं। लगता है मानो अनन्त अनन्त भ्रमर रूप धारण किये हुए कामदेव की ही बालिकायें, मंगलमय अनन्त प्रेमामृत क्षीरसागरसमुद्भुतपंकज पर विहार कर रही हैं।

ऐसा प्रभु का दिव्य सगुण स्वरूप है। उन्हें गुणों की अपेक्षा नहीं किन्तु गुण ही अपने को कृतार्थ करने के लिये भगवान् के पास चले आते हैं।

अब प्रश्न यह हुआ कि

जो गुण रहित सगुन सो कैसे ।

तो उत्तर दिया कि

जल हिम उपल बिलग नहीं जैसे ।।

यदि देखा जाय तो जल और बर्फ में कोई अन्तर नहीं । केवल अन्तर इतना ही है कि जल की शीतलता तितर-बितर हो गई है और बर्फ में शीतलता एकत्रित है । जल ने अपनी शीतलता छिपा के रखी है और बर्फ में प्रकट है ।

उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म ने अपने गुणों को छिपाकर रखा है, अतः उसे निर्गुण शब्द कहा जाता है ।

"निर्लीनाः गुणाः यस्मिन् तत् निर्गुणम् ।"

जब वही ब्रह्म भक्त हितार्थ अपने गुणों को प्रकट करता है, तब उसे सगुण कहते हैं । इसे यों भी समझा जा सकता है कि, सगुण और निर्गुण में भी कोई अन्तर नहीं है । निर्गुण भी जल है और सगुण भी जल है । पर अन्तर यह है कि निर्गुण ब्रह्म बिना कमल वाला जल है और सगुण ब्रह्म मंगलमय नीरज मंडित नीर है ।

"फूले कमल सोह सर कैसा निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा ।।"

यहाँ सर का अर्थ जल है तालाब नहीं । क्योंकि पहले कह चुके हैं कि—

सर सरिता निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ।।

अतः यहाँ पुनः सर नहीं कहेंगे ।

तात्पर्य यह है कि कमल के रहित केवल जल शोभित नहीं होता ।

पयसा कमलं कमलेन पयः ।
पयसा कमलेन विभाति सरः ।
शशिना च निशा निशया च शशी ।
शशिना निशया च विभाति नभः ।।

मणिना वलयं वलयेन मणि—
मणिना वलयेन विभाति करः ।
भवता च सभा सभया च भवान्,
भवता सभया च विभामो वयम् ।।

यह श्लोक प्रायशः प्राकृत लोगों के लिये उपयुक्त होता रहा है किन्तु यहाँ दास की यह भावना है कि जनकजी श्रीराघवेन्द्रजी के सामने कहते हैं कि महाराज ! जैसे जल से कमल की शोभा है और कमल से जल की शोभा है तथा कमल और जल दोनों से तालाब की शोभा है तथा जैसे चन्द्रमा से रात्री की शोभा है और रात्री से चन्द्रमा सुशोभित होता है और ये दोनों मिलकर आकाश को शोभित करते हैं। एवं जैसे मणि से कंकण की शोभा है और कंकण से मणि की शोभा है तथा कंकण और मणि दोनों मिलकर हाथ की शोभा बढ़ाते हैं। इसी प्रकार आपके द्वारा सभा की शोभा है और सभा के द्वारा आपकी शोभा है। तथा आप और सभा इन दोनों के द्वारा हमारी शोभा है।

ठीक इसी प्रकार से भगवान् आनन्दकन्द के मंगलमय गुणों का यही तारतम्य है कि वे कमल से युक्त जल की भाँति सुशोभित होते हैं। कमल से रहित जल तथा विकसित कमलयुक्त जल के स्वाद में बहुत अन्तर आ जाता है।

उसी प्रकार से निर्गुण ब्रह्म कमल रहित जल है और सगुण ब्रह्म कमल युक्त जल है। क्योंकि यदि कमल होंगे तभी भँवरे आयेंगे। उसी प्रकार जब भगवान् में मंगलमय गुण होंगे तभी भ्रमर रूपी भक्तों का मन भगवान् के चरणों में आयेगा। यदि भ्रमर नहीं तो फिर कमल की अथवा जल की कोई उपयोगिता भी नहीं।

न तद् जलं यन्न सुचारु पंकजम्,
न पंकजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुंज यः कलम्
न गुंजितं तन्न जहार यन् मनः॥

भट्टि काव्य में मिथिला का वर्णन किया है कि वह जल नहीं है जहाँ सुन्दर सुन्दर कमल नहीं है। और वह कमल नहीं है जिसके कोष में रसपान लोलुप उन्मत्त भँवरे छिपे न हो। और वे भँवर नहीं हैं जो मधुर-मधुर गुंजार न करते हों तथा वह गुंजार भी नहीं है जो सुनने मात्र से मन को न चुरा ले।

इसी प्रकार वह ब्रह्म-ब्रह्म नहीं है जहाँ सुचारू पंकज रूप मंगलमय गुणों का प्राकट्य नहीं है।

संस्कृत भाषा में ब्रह्म का नपुंसक लिंग में पाठ है। जैसे नपुंसक किसी कार्य का नहीं होता वैसे ही यह निर्गुण ब्रह्म किस काम का ? गोपियों ने कहा—

कर बिनु कैसे गाय दुहि है हमारी वह,
पग बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाई है।
कहे "रत्नाकर" बदन बिनु कैसे चाखि
माखन बजाइ वेणु गोधन चराई है।
देखि सुनि कैसे बिनु श्रवण दृगन हाय
भोले ब्रजवासी की बिपत्ति बराई है।
रावरो अनूप कोउ अलख अरूप ब्रह्म,
उधो कहो कौनसो हमारे काम आई है।।

गोपियाँ भगवान् से कौनसी गाय दुहवाना चाहती हैं ? वे संसार की गायों को नहीं दुहवाना चाहतीं वे तो अपनी इन्द्रियाँ रूपी गायों को श्रीकृष्ण के द्वारा दुहवाना चाहती हैं। सगुण ब्रह्म की यही विशेषता है।

ज्ञानी में और भक्त में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि ज्ञानी को स्वयं पुरुषार्थ करना पड़ता है और भक्त के यहाँ भगवान् स्वयं पुरुषार्थ करते हैं। ज्ञानी यह भगवान् का प्रौढ पुत्र है और भक्त यह छोटा शिशु है। तो छोटे बच्चे की सेवा माँ स्वयं करती है और बड़ा पुत्र स्वयं माँ की सेवा करता है।

ज्ञानी स्वयं इन्द्रियों का दोहन करता है और प्रेमी के इन्द्रियों का दोहन भगवान् करते हैं। गोपियाँ अपनी इन्द्रियों को भगवान् से दुहाना चाहती हैं। और कहती हैं आप इसे दोहकर संसार के रस से अतीत कर दो। यदि एक बार हमारी आँखें आपका नाच देख लेंगी तो संसार का मेरा नर्तन बंद हो जायेगा। क्योंकि—

नाचत ही निसि दिवस मर्यो
तब तें थिर न भयो जब ते जीव नाम धर्यो।।

आज तक माया के सामने खूब नाचे पर अब आवश्यकता है।

ऐसी तान सुना कन्हैय्या, मैं नाचूँ तू गा।।
कन्हैय्या मैं नाचूँ तू गा।।

जब हम प्रभु के सामने नाचने लगेंगे तब माया के सामने नाचने का अवसर नहीं मिलेगा।

अतः भगवान् के गुणों की ही यह विशेषता है कि एकान्त में रहने वाले बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र परमहंस, अमलात्मा उनके गुणों को सुनकर झूम जाते हैं। जैसे कमल से युक्त जल के पास भँवरे तो आते ही हैं साथ-साथ हंस भी आते हैं। यथा—

नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरंदाय
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय

रामचन्द्र का गुण यही है। रामचन्द्र के चरणकमल-मकरन्द का आस्वादन भ्रमर तो करते ही हैं किन्तु कमल के बिना परमहंस भी कहीं नहीं खेल सकता।

भगवान् के चरण, कमल हैं अतः यहीं आकर बड़े-बड़े परमहंस विश्राम पाते हैं। शुकदेवजी का यह वाक्य है कि भगवान् के गुणों में जादू भरा है कि कोई चाहे कितना भी दूर जंगल में रहना चाहे किन्तु भगवान् के गुण उसे आकृष्ट कर ही लेते हैं।

निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं परन्तु प्रक्रिया में हलका सा भेद यह है कि निर्गुण ब्रह्म को समीक्षा से जान सकते हैं और सगुण ब्रह्म प्रतीक्षा से मिलते हैं। उनके लिये प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आज जटायुजी भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कितने करुण हैं। गीतावली में कहते हैं।

मोरे हाथ न एकउ लागी।

जटायुजी के पंख कट चुके हैं और पैर भी कट चुके हैं वाल्मीकिजी कहते हैं कि—

ततो व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पार्श्वौ च पादौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्॥

रावण ने अपने तीक्ष्ण खड्ग से जटायु के पार्श्व पक्ष और पैर काट डाले हैं। वे हिल भी नहीं सकते अतः कहते हैं। "मेरे हाथ कुछ भी न लगा।"

गयो बपु बीति व्यर्थ कानन ज्यों, कलप लता दव दागी॥
मोरे हाथ न एकउ लागी

मेरा शरीर तो जंगल में व्यर्थ ही बीत गया जिस प्रकार दावानल से जली कल्पलता में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती वैसी मेरी कोई उन्नति नहीं हुई।

इतने निराश हो कहते हैं कि

दशरथ सो ना प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो जों सकल जग साखी।

दशरथजी से मेरी बड़ी मित्रता थी, सभी जानते हैं कि शनिश्चर पर आक्रमण करते समय दशरथजी का रथ जल गया तो जटायुजी ने ही उन्हें अपने पखों पर रोक दिया।

बरबस हरत निशाचरपति सो हठि न जानकी राखी ।।

किन्तु हाय! मैं उस मित्रता का पालन न कर सका और रावण के द्वारा हरी जा रही सीताजी को मैं छुड़ा न सका। अन्त में कहते हैं कि—

मरत न मैं रघुवीर बिलोके, तापस वेष बनाये।
चाहत चलन प्राण पाँवर बिनु, सिय सुधि प्रभुहि सुनाये ।।

और मरते समय मैं रघुनाथजी को नहीं देख सका। क्योंकि समस्त शास्त्रों का यही फल है।

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेव सुनिष्पन्नं अन्ते नारायणस्मृतिः ।।

अतः जटायुजी का यही परिताप है कि अंत में तापसवेषधारी श्रीरघुनाथजी का मैं दर्शन भी नहीं कर सका और सीताजी की सुधि प्रभु को सुनाये बिना ही मेरे प्राण जाना चाहते हैं।

नहीं प्राण! अभी नहीं चलना है, एक बार प्राणनाथ को देख लूं! यमराज को लौटा दिया,

यमराज ने कहा आप दशरथजी के मित्र हैं जैसे वे सुरधाम गये वैसे आप भी सुरधाम चलिये!

जटायुजी ने कहा, कि नहीं-नहीं, मुझे सुरधाम न ले जाओ, क्योंकि मैं एक मूर्ख नीच पक्षी हूँ! मुझे सुरधाम ले जाओगे तो रामजी की बदनामी होगी कि दशरथजी, जो रामजी के पिता हैं उन्हें भी सुरधाम मिला और उनके एक अधम पिता गीधराज को भी सुरधाम मिला। अतः रघुनाथजी को आ जाने दो। एक बार

उनके मुखारविन्द का दर्शन कर लूँ फिर जो होगा सो होगा। गोस्वामीजी कहते हैं कि

मिजैं हाथ धुनि सीस बार बहु गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि अवसर आई गये दोउ भाई॥

सिर पीट-पीटकर हाथ मसल कर गीधराज पछता रहे हैं फड़-फड़ा रहे हैं इतने में ही कृपालु श्रीराम आ गये !

भगवान् का यह सबसे बड़ा विरुद है कि यदि हम जन्म भर भगवान् की सेवा कर रहे हैं, किसी दिन मानो हम असमर्थ हो गये हों सेवा नहीं कर पाते हों तो भगवान् हमारी सेवा करने स्वयं चले आते हैं। माधवदासजी महाराज की लंगोटी तक धोने के लिये भगवान् चले आते हैं। ऐसा कोई कृपालु होगा भला ?

जटायुजी असमर्थ हो चुके हैं "अनर्घ राघव" में कहते हैं—

न मैत्रि निर्व्योढा दशरथनृपे पूर्व विषया
न वा सीता प्राप्ता हठहरणतो राक्षसपते—
र्न रामस्यासिन्धुर्नयनपथगोऽभूधकृतिनो
जटायोर्जन्मैवं विततमभवत् भाग्यरहितम्॥

जटायुजी पछता रहे हैं कि तेरा जन्म व्यर्थ गया पर कौन जानता है कि जटायु का ही जन्म सबसे सार्थक हो गया ! आज जटायुजी के पास कुछ नहीं रहा केवल पांच प्राण बचे हैं। उन प्राणों को रोक रखा है।

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गइ, सुमिरि सनेहु सगाई॥

जटायु केवल राम-राम-राम-राम रट रहे हैं।

तनु रावन के तरवार तें घायल पंख दोउ सब भाँति कटें हैं।
अति वृद्ध शरीर औ नीर बिलोचन धाय गभीर सुभाय लटें हैं।
बहु युद्ध के खेद तें छेद है देह में सोनित छोह छटानि छटें हैं।
अब "गिरिधर" ईस की भावना में सिर पीटि जटायुजी राम रटें हैं॥

केवल राम-राम रट रहे हैं प्राण नहीं जाते। प्राण कैसे जायेंगे ? प्राणों को राम नाम ने रोक लिया है।

श्रीसीताजी का समाचार लेकर श्रीमन्मारुति श्रीराघवजू के पास आये तब राघवजी को सीताजी के लिये अनिष्ट की आशंका हो गई। क्योंकि प्रेमी को निरन्तर अनिष्ट की आशंका होती है। उन्होंने तुरन्त पूछा।

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।

सीताजी अपने प्राणों की रक्षा कैसे कर रही हैं?

हनुमानजी ने एक रूपक के द्वारा समझाया कि जैसे किसी को एक घर में बन्द कर दिया जाय, उसकी किवाड़ें बन्द करके ताला लगा दिया जाय और बहार दो द्वारपाल रख दिये जाय, तो क्या वह कमरे में बन्द व्यक्ति घर से बहार निकल सकेगा?

नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद जंत्रित, प्रान जाहि केहि बाट।।

ठीक उसी प्रकार आपका नाम रकार और मकार दो पहरेदार है, आपका ध्यान ये ही किंवाडें बन्द हैं, अपने ही चरणों में दृष्टि को स्थिर करना ये ताला है तो फिर प्राण बाहर कैसे जा सकेंगे!

जटायुजी राम-राम के रटन से अपने प्राण रोके हुये हैं। उनकी करुण आवाज प्रभु पहचान गये "रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई"

प्रभु ने कहा अरे लक्ष्मण! ये कौन इतने आर्त स्वर से पुकार रहा है? कौन मेरा नाम ले रहा है?

लक्ष्मणजी ने कहा, भगवन्! ये तो चाचा जटायुजी हैं।

प्रभु दौड़ते आये। देखा तो जटायुजी का शरीर खून से लथपथ पड़ा है वाल्मीकीय के अनुसार यही वाक्य है जटायु का।

यामौषधिमिवायुष्मन् अन्वेषसि वनाद्वनम्।
सा देवि मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्।।

जटायु भगवान् को आयुष्मन् कह रहे हैं, यहाँ एक बड़ा मधुर भाव है। वे प्रभु का नाम नहीं ले रहें हैं। क्योंकि पहले बताया जा चुका है कि शनिश्चर के साथ जब दशरथजी का युद्ध हुआ तब जटायुजी ने ही अपने पंख के ऊपर दशरथजी को बचाया था। उस

समय जटायुजी से उनकी मित्रता हो गई थी। जटायुजी ने कहा कि मेरे पास कोई सन्तान नहीं है। तब दशरथजी ने कहा कि अपनी प्रथम सन्तान मैं आपको ही दे दूंगा ! रामजी का प्राकट्य हुआ। जटायुजी भी जन्म महोत्सव में आये ! चक्रवर्तीजी सत्यप्रतिज्ञ हैं। कहा भैय्या। तीन बेटे मेरे पास रहेंगे बड़े बेटे रामजी को आप ले जाओ। रामचन्द्रजी के मंगलमय मुखचन्द्र को देखा झूम गये वे। कहा कि महाराज ! मैं तो पक्षी हूँ। इनकी सेवा कैसे कर सकूंगा। अतः आप इनकी सेवा करें जब ये बड़े हो जायेंगे तब इन्हें मैं ले जाऊंगा।

पच्चीस वर्ष तक पिताजी की सेवा की और गोदावरी के तट पर रहकर राघवजू अब जटायुजी की सेवा करते हैं।

अतः धर्मशास्त्रों का नियम है कि बड़े पुत्र को उसके नाम से नहीं बुलाया जाता। इसलिये जटायुजी राघवजी का नाम न लेकर आयुष्मन् कहते हैं।

यहाँ एक और मधुर संकेत है। आयुष्मन्। कह कर वे यह कहना चाहते है कि, जैसे दशरथजी साठ हजार वर्ष तक जीना चाहते थे पर एक हजार वर्ष पहले जाकर उन्होंने अपना आयुष्य तुम्हें दे दिया उसी प्रकार आज असमय में मैं भी जाकर अपना पुरा आयुष्य तुम्हें दे रहा हूँ। क्योंकि भक्तों की यहीं भावना होती है कि—

राघव जीयहु बरिस करोर ।।

तुलसीदासजी यही कहते हैं कि—

रंक के निवाज रघुराज राजा राजन के,
ऊमरि दराज महाराज तेरी चाहिये !

अतः कहते हैं कि आयुष्मन् ! आप औषधि की भाँति जिस देवी को एक वन से दूसरे वन में ढूँढ रहे हो उन देवी को तथा मेरे प्राणों को दोनों को रावण चुरा कर ले गया है। उत्तर प्रदेश में पुत्रवधु का भी नाम नहीं लिया जाता है, अतः देवी कहते हैं।

गोस्वामीजी कहते हैं।

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन चिन्ह रेखा ।।

आगे पड़े हुए जटायुजी को भगवान् श्रीराघवेन्द्रजु ने देखा! वैष्णव सिद्धान्त है, कि एक बार जिन्हें रघुनाथजी देख लेते हैं वह बिलकुल सात्विक और मोक्षार्थी का चिन्तक हो जाता है।

जायमानं तु पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।
सात्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः॥

आज भगवान् जटायुजी को सात्त्विक नहीं बनाना चाहते क्योंकि सात्त्विक तो वे पहले से ही हो चुके हैं। अब उनको सत्त्वगुण से ऊपर गुणातीत बनाना चाहते हैं। अब उन्हें मोक्षार्थ का चिन्तक नहीं बनाना चाहते पर उन्हें मोक्ष ही देना चाहते हैं।

सीताजी का हरण यह एक व्याज था। सीताजी को ढूँढने के भी बड़े-बड़े क्रम हैं। सीताजी की खोज में केवल तीन से उन्होंने पूछा।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।

हे खग! हे मृग! हे भँवरों की पंक्ति! क्या तुमने मृगनयनी हरिणाक्षी सीताजी को देखा है।

यहाँ तीन व्यक्तियों से पूँछने का उनका बहुत मधुर तात्पर्य रहा है। खग है ज्ञानी। मृग है कर्मकाण्डी और मधुकर श्रेणी है उपासना प्रिय। भक्ति की तीनों को आवश्यकता है चाहे वह ज्ञानी हो कर्मयोगी हो या उपासक हो! बिना भक्ति के किसी का कल्याण नहीं होगा, अतः श्रीरामजी तीनों को पूँछते हैं।

संयोग से तीनों ने भी सीताजी को देखा है। खग है। जटायुजी! जटायुजी ने भी सीताजी को देखा है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा, करिहहु जातुधान कर नासा॥

मृग है सुग्रीव—

साखामृग की बडिमनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥

अतः वे साखा मृग हैं उन्होंने भी सीताजी को देखा है।

गगनपंथ देखि मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥

तथा मधुकर हनुमानजी हैं। विनयपत्रिका के २९ वें पद में गोस्वामिपाद कहते हैं कि

"राम पद पद्म मकरंन्द मधुर पाहि, दास तुलसी सरन सूलपानी"

उन्होंने भी सीताजी को देखा है!

निज पद नयन दिये मन, रामपद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ।।

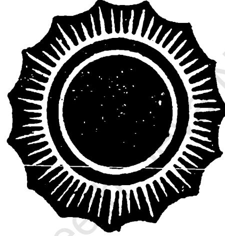
अतः भगवान् की यह युक्ति सार्थक हुई ।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम देखी सीता मृगनयनी ।।

इसमें जटायुजी खग है । ज्ञानी है अतः वे सीताजी के प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं । "सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा ।"

इस प्रकार "आगे परा गीधपति देखा" आज सिद्धों के पति ने गीधों के पति को देखा । जमीन पर पड़े हुए हैं । और श्री रामचन्द्रजी के चरण चिन्हों की रेखा का स्मरण कर रहे हैं !

※ इति शम् ※



।। श्रीरामः शरणं मम ।।

* चतुर्थ प्रसून *

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितम् ।
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ।।

अंजनानन्दनं वीरं, जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं, वन्दे लंकाभयंकरम् ।।

तद् दिनं दुर्दिनं मन्ये, मेघाच्छन्नं न दुर्दिनम् ।
यद्दिनं कृष्णपीयूष—कथापानादिवर्जितम् ।।

दशमुखकरवालकृत्तपक्षो विपक्षो ।
रुधिरसमलगात्रो मेदिनीक्रोडवर्ती ।
रघुपतिपदलेखालेख्यचित्तालिराजो ।
जयति विहगराजो भूरिभागी जटायुः ।।

कह अंगद बिचारि मन माँही, धन्य जटायू सम कोउ नाही ।
राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयेउ परम बडभागी ।।

श्रीमद् अकारणकरुणावरुणालय, पतितपावन, सीतावल्लभ, श्रीरामभद्रजु की भुवनपावनी कृपा के परिपाक परम सरस फलस्वरूप, श्रीमद् रामकथामंदाकिनी में मंगलमय विगाहन कर, हम अपने अन्तःकरण को कतिपय क्षणों के लिये शीतल बना रहे हैं !

भगवान् राघवेन्द्रजी की परम अन्तरंग लीला के क्रम में जटायुजी का अपना बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है ! या यों कहा जाय कि भगवान् के स्वभाव को सजाने के लिये जटायु का यह बहुत औचित्य पूर्ण योग है । जैसे भगवान् के बिना भक्तों की कोई सत्ता नहीं है वैसे भक्तों के बिना भगवान् की भी कोई सत्ता नहीं है । यदि भक्त न हों तो उन्हें भगवान् कहेंगे कौन ?

भगवान् को तीन दृष्टियों से देखा जाता है !

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।

(भागवत १।२।११)

ईश्वर को कुछ लोग ब्रह्म मानते हैं, कुछ लोग और भी उनके निकट आये, उनके गुणों का ज्ञान हुआ तो वे उन्हें परमात्मा कहने लगे ! कुछ लोग उनके एकदम नजदीक आये, वे उन्हें भगवान् कहने लगे !

किन्तु अयोध्यावासी तो कहते हैं कि आप औरों के लिये भगवान् होंगे हमारे लिये तो छगन मगन हो । अतः सुमित्रा मा गाती है कि—

"ललन लोने लेरुवा बलि मैय्या" ललन याने हम इनका लालन करते हैं । "लाल्यते इति" और लोने माने सुन्दर । तथा लेरुवा याने गाय का बछड़ा । अन्यत्र तो ठाकुरजी को कोई ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् कहते हैं किन्तु अयोध्या के लोग कितना मधुर भाव रखते हैं कि वे प्रभु को लेरुवा कह कर बुलाते हैं ! अतः वेदान्त के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीविद्यारण्यस्वामी अपने पंचदशी ग्रन्थ में कहते हैं ।

द्वैतं मोहायबोधात् प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया ।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतं अद्वैतादपि सुन्दरम् ।।

जब तक ईश्वरतत्त्व का ज्ञान नहीं होता, तब तक यह द्वैत मोह के लिये होता है । किन्तु जब ज्ञान हो जाता है, तब भक्ति के लिये जो कल्पित द्वैत है, वह अद्वैत से करोड़ों गुना सुन्दर है ।

वे कहते हैं कि "द्वैतं भजनहेतवे" भक्ति में द्वैत अपेक्षित है और बुद्धि में द्वैत अपेक्षित नहीं है । यथा—

अब दीन दयाल दया करिये । मति मोरि विभेद करी हरिये ।।
जेहि ते विपरीत क्रिया करिये । दुख सो सुख मानि सुखी चरिये ।।

इस समय भगवान् आनन्दकन्द के स्वभाव को और भी सरस बनाने के लिये जटायुजी ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । पात्र होने पर ही भगवान् की कृपावृष्टि होगी ।

आज जटायु भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे हैं । यमराज से कह

दिया है कि मैं राघव को देखे बिना यहाँ से नहीं जाऊँगा ! यमराज लौट गये अब तो रघुराज को आना ही है ।

सीताजी को खोजते-खोजते प्रभु आगे बढ़ रहे हैं तब तक तो वे चिल्लाये !

अरे राघव ! मुझे छोड़ कर कहाँ जा रहे हो ।
राघव मत जा मत जा मत जा ।

नील सरोरुह श्याम सुभग तनु, बारक मोहि दिखाजा ।।
नातो धर्यौं आप पितु सुतको, सो अब नेकु निभाजा ।।
चन्दन रचि रचि चिता मनोहर, मो कहँ ललन जलाजा ।।
पूरनचन्द सनेह सुधा को, [illegible] चकोरहि पिया जा ।।
रामभद्रदासहिं करुना करि, निजपद दास बना जा ।।

अरे राघव ! कहाँ जा रहे हो प्रभु ? एक बार तो मन्द-मन्द मुस्कुराकर अपनी मंगलमयी कृपा की दृष्टि-वृष्टि से, इस मानस मरुस्थल में प्रेम की मन्दाकिनी तो बहा जाओ !

आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत रामचरन चिन्ह रेखा ।

आज राघवेन्द्र अपने बड़े प्यारे दृगकंजों से जटायु को देख रहें है । कैसे नेत्र है ये !!!

जे दृगकंज त्रिलोक की नारिन्ह, आनन इन्दु कहूँ नहीं पेखा ।
जे करुणानिधि कोशलराजको, वैभव भूरि न भाव परेखा ।
जे दृग औध नरेस के आँसुन, भाव विभोर न नेकुहि लेखा ।
ते दृग ते रघुनाथ लला भरि, गीध को भूमि पै लोटत देखा ।।
"आगे परा गीधपति देखा"

बड़े-बड़े सिद्ध भी जिन की पतितपावनी भुवनपावनी कृपा के लिये तरसते रहते हैं—अपने पलक पाँवड़े बिछाये रहते हैं कि एक ही बार ये हमारे नयनगोचर हो जाँय । आज वहीं सिद्धों के पति, गीधपति को देख रहे हैं । इस देखने में क्या वैशिष्टय हैं ?

प्रभु कहते हैं कि आज तक मैंने किसी को ठीक तरह से देखा नहीं है । केवल जानकी जी को देखा है ।

अस जिय जानि जानकिहि देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेखी ।।

अतः अब जानकीजी की रक्षा करने वाले को ही देख रहे हैं ।

जटायुजी श्रीराम के चरणचिह्नों की रेखाओं का स्मरण कर रहे हैं। जटायुजी अपनी दृष्टि का सदुपयोग कर रहें हैं। कहा जाता है कि "गीधहि दृष्टि अपार" गीध को अपार दृष्टि होती है। संपाति ने उस दृष्टि का उपयोग किया सीताजी को देखकर, और जटायुजी सदुपयोग कर रहे हैं सीतावल्लभ रामजी को देख कर! सोचा कि यदि मेरी दृष्टि अपार है तो इसे रूप अपार मार मदमोचन के ही चरणों में लगा दूँ अतः यह धन्य हो जायेगी! क्योंकि—

सिय राम सरूप अनूप अगाधु, बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुतिराम कथा मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहि सों गति रामहि सों, रति रामसों रामहि को बलु है।
सबको न कहे तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है॥

जटायुजी ने अपनी अपार दृष्टि को सनाथ बनाने के लिये, रघुनाथजी के अपार रूप सुधा सागर में निमग्न किया! तथा नीची दृष्टि डाल कर रामचरणचिह्नों की रेखा का स्मरण कर रहे हैं। अथवा पृथ्वी की ओर दृष्टि डाल कर मानो पृथ्वी देवी के भाग्य की सराहना कर रहे हैं। कि तुम धन्य हो गई हो। क्योंकि तुम्हारे मंगलमय मस्तक पर भगवान् के चरणारविन्द की दिव्य-दिव्य रेखाओं के चिह्न बने हुए हैं। अतः हे पृथ्वी! तुम धन्य हो।

जटायुजी ने सोचा कि दो के शरण में जाना चाहिये। या तो भगवान के या तो भक्त के। यहाँ और कोई भक्त तो है ही नहीं। अतः पृथ्वी के ही आँचल में लोट कर मेरे प्राण त्यागूंगा।

श्रीमद् भागवतकार कहते हैं कि भगवान् के चरणचिह्नों की रेखायें पृथ्वी के कौतुक हैं! कौतुक शब्द के दो अर्थ संस्कृत वाङ्मय में समझे जाते हैं! पहला अर्थ है खेल और दूसरा अर्थ है शृंगार! अतः भगवान् के चरण चिह्नों की रेखायें पृथ्वी के सौभाग्य चिह्न हैं।

भागवत् के अक्रुरदर्शनप्रसंग में वेदव्यासजी कह रहे हैं कि जब भगवान्,आनन्दकन्द, गोपालसूनुनन्दनन्दन, अतिसीकुसुमोपमेयकान्ति, यमुनाकूलकदम्ब मध्यवर्ती, नवगोपवधुविलासशाली, बनमाली, नटनागर, व्रजेन्द्रनन्दन, नीलसरोरुहश्याम, निखिलललनाभिराम,

सकलव्रजवनिताललाम, मंगलमय जेगीयमान, चारुगुणग्राम, घनश्याम बलदाऊ भैय्या के साथ गायों का दोहन कर रहे हैं। सूर्य नारायण अस्त हो रहे थे। दूर से अक्रूरजी ने देखा पृथ्वी पर आनन्दकन्द की चरणचिह्नरेखायें दीख रही थीं। भागवतकार कहते है कि—

पदानि तस्याखिललोकपाल—किरीटजुष्टामलपादरेणोः।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि, विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः॥
(भागवत १०।३८।२५)

कहते हैं कि "अखिलानां लोकपालानां किरीटैः जुष्टाः अमलाः पादरेणवः यस्य तथा भूतस्तस्य"

सम्पूर्ण लोकपालों के मुकुटों से जिनके चरणकमल के धूलि की सेवा की जा रही हैं। ऐसे उन परमात्मा श्रीमद् व्रजेन्द्रनन्दन नीलमणि मुरलीमनोहर के मंगलमय चरण के चिह्नों को गोशाला में देखा, जो पृथ्वी के कौतुक याने सौभाग्यचिह्नों के समान विराजमान हैं। मानो पृथ्वी ने उनको बिन्दी के रूप में लगाकर रखा है। और स्त्रियाँ तो एक बिन्दी लगाती है किन्तु पृथ्वी ने तो चौबीस-चौबीस बिन्दियाँ लगा रखी हैं!

जैसे सौभाग्यवती स्त्री के लिये सिन्दूर व बिन्दी का महत्त्व है उसी प्रकार वैष्णवों के भाल पर तिलक का महत्त्व है—

भाल विशाल तिलक झलकाई।

अतः जटायुजी पृथ्वी के आँचल में लोटे प्रभु के चरणचिह्नों की रेखाओं का स्मरण कर रहे हैं! जानते हैं कि चरणचिह्न रेखाओं का रज बड़ा महत्त्व पूर्ण होता है जैसे भरतजी कहते हैं!

चरणरेख रज आखिन्ह लाई। कहत न बनइ प्रीति अधिकाई॥

भौतिक दृष्टि से जटायुजी को रंक बना दिया गया। क्योंकि पक्षी की सम्पत्ती तो पंख ही होती है, वह कट गये। इसलिये जटायु रंक बन गये, रंक को यदि पारस मिल जाय तो वह बहुत प्रसन्न हो जाता है। यहाँ पारस क्या है?

हरषहि निरखि राम पद अंका। मानहु पारस पायउ रंका॥

भगवान् के चरणारविन्द के अंक ही पारस हैं! अतः जटायुजी "सुमिरत रामचरणचिन्ह रेखा।"

भगवान् के चरणचिह्नों की संख्या आचार्यों ने चौबीस की बताई है। पहले निवेदन किया गया है कि सिद्धपति ने गोधपति को देखा। तो सिद्धपति कौन है? गीताजी में कहते हैं कि सिद्धों में कपिलमुनि मैं हूँ।

गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।

कपिलदेव ने अपनी मा भगवती देवहूति को भगवान् के चरण ध्यान की प्रक्रिया समझाई है!

सञ्चिन्तयेद् भगवत श्चरणारविन्दं,
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुह लांच्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद् धृदयान्धकारम् ।।

(भागवत—३-२८-२१)

भगवान् कपिल कहते हैं कि हे मा! वज्र, अंकुश, ध्वजा तथा कमल के चिह्नों से सुशोभित कुछ ऊपर उठी हुई लाल अंगुलियों में विराजमान श्वेत नखों की कांति से महापुरुषों के हृदयांधकार को दूर करने वाले भगवान् आनंदकन्द के श्रीचरणारविन्द का सम्यक् चिन्तन करना चाहिये।

यहाँ यदि रूप नहीं मानेंगे तो ध्यान कैसे होगा? ध्यान रूप का हुआ करता है।

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा, तन्निर्गुणं निष्क्रियम्,
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचन चमत्काराय भूतात् चिरम्,
कालिन्दीकुलिनेषु यत् किमपि तं नीलं महो धावति ।।

सुप्रसिद्ध नैय्यायिक आचार्य उदयन, भगवान् कृष्णचन्द्र के समक्ष अपने मनोभाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं, कि हे मुरली-मनोहर जो योगिजन ध्यान एवं अभ्यास से निगृहीत मन द्वारा किसी ज्योति का अनुभव करना चाहते हो तो करते रहें! किन्तु हम भावुक वैष्णवों के नयनों को चमत्कृत करने के लिये वही कोई

अनिर्वचनीय नीला तेज सदा-सदा के लिये उपस्थित रहे जो यमुना-पुलिनों पर गौओं के साथ अनुधावन करता रहता है।

भागवतकार कहते हैं—ध्यान भगवान् के चरणों का करो। ये चरण निरन्तर ध्येय हैं! ध्येयं याने "ध्यातुं योग्यं" जो निरन्तर ध्यान करने योग्य हैं।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं, तीर्थास्पदं शिवविरंचिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवा[illegible]पोतं, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

निरन्तर ध्यान करने योग्य समस्त भवबाधाओं को नष्ट करने वाले, समस्त अभीष्ट कामनाओं के प्रदाता एवं सम्पूर्ण तीर्थों के एकमात्र स्थान तथा भगवान् शिव एवं ब्रह्मा के द्वारा भी नमस्कृत, समस्त लोकों को शरणदेने में समर्थ, अपने भक्तजनों के सभी आर्तीयों को समाप्त करने वाले तथा प्रणतजनों के पालक एवं संसारसागर के जहाज स्वरूप महापुरुष श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार के चरणारविन्दों की मैं वंदना करता हूँ!

इस प्रकार जटायुजी भगवान् के चरण चिन्हों की रेखाओं का ध्यान कर रहे हैं। चौबीस चिन्हों में चार चिन्ह बड़े महत्व के है।

"वज्रांकुशध्वज[illegible]रोरुहलांच्छनाढ्यम्"

इन्हीं प्रमुख चिह्नों के विषय में गोस्वामीजी ने बहुश: संकेत किया है। यथा:—

- **कलित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥**
- **रेख कुलिसध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥**
- **ध्वज कुलिश अंकुश कंजजुत बन फिरत कटंक किन लहे।**
  पदकंज द्वन्द मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे॥

जटायुजी इन्ही चार चिह्नों की रेखाओं का स्मरण कर रहे हैं। ध्वज, कुलिश (वज्र) अंकुश (बरछी) और कमल! "सुमिरत राम चरण चिन्ह रेखा"

एक उत्प्रेक्षा यह है कि जटायुजी रामजी का दर्शन करना चाहते हैं "मरत न मैं रघुवीर बिलोके तापसवेष बनाये" सोचा, अरे जटायु तेरा इतना बड़ा सौभाग्य कहाँ है कि तू रघुनाथजी के दर्शन कर सके।

रघुनाथजी के दर्शन करने के लिये बड़े-बड़े योगीन्द्रमुनीन्द्र परमहंस अमलात्मा चित्रकूट के पेड़ बने ! चित्रकूट के काँटे बने, कोई पक्षी बना कोई वृक्ष बना।

चित्रकूट के बिहंग मृग, बेलि बिटप तृन जाती।
पुन्यपुंज सब धन्य अस, कहहि देव दिन राती ।।
थके देव साधन करि सब सपनेहु नहीं देत दिखाई ।।

जो सपने में भी नहीं दिखते उनका मुझे कैसे दर्शन होगा ? जटायुजी सोच रहे हैं।

अधम जाति आमिष अहार रति गीध कवन व्रत धारी ।।

इतनी दीनता आ गई !

दीनता यह वैष्णवों का भूषण है।

ईश्वरस्य दैन्यप्रियत्वात् अभिमानद्वेषित्वात् च।

ईश्वर को दीनता बहुत प्यारी लगती है ! क्योंकि जिसके पास जो वस्तु नहीं होती वही उसे अच्छी लगती है।

प्रभु के पास सब कुछ हैं किन्तु दीनता नहीं है।

"अदीनात्मा विचक्षण:" वे अदीन हैं।

अत्रि कहते है कि—

तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिये।
मन ज्ञान गुन गोतीत मैं प्रभु दीख जप तप का किये ।।

मैंने कौनसा जप तप किया है। हमारे किस गुण का यह फल मिला कि मन, ज्ञान, गुण से अतीत ऐसे प्रभु को मैं देख सका !

मिथिलानियाँ कहती हैं कि—

को जानई केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हेउ विधि आनि ।।

हमारे किस पुण्य का यह फल मिला कि प्रभु हमारे नयनों के पाहुने बन गये !

अतः जटायुजी सोच रहे हैं कि मेरा इतना बड़ा भाग्य कहाँ ? गीधयोनि में मेरा जन्म, तामस शरीर और सड़े हुए मांस का अहार, फिर भी भगवान् को देखना चाहता हूँ। मेरे भाग्य की रेखायें

विपरीत हैं। आज जटायुजी प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभो! दीनबन्धु, दीनानुकम्पी हरे! आपने अनेकों कुभाग्य मिटा दिये हैं, क्या मेरा दुर्भाग्य नहीं मिटाओगे? जिसका बेटा परब्रह्म परमात्मा हो वह पृथ्वी पर लोटता पड़ा हो और आप न आओ!!!

यहाँ भगवान् कह सकते थे कि मृत्यु के समय तो पिता दशरथ जी के पास भी नहीं था उन्हें भी नहीं मिला, अतः जटायुजी कहते है कि ठीक है महाराज दशरथ जी के तो चार-चार बेटे हैं। आप नहीं थे तो उनकी उत्तर क्रिया भरतजी ने की। मेरे तो आप एक ही बेटे हैं। यदि आप नहीं आयेंगे तो मेरे मांस को पक्षी खा जायेंगे हाथ पैर सड़ जायेंगे! ऐसी मेरी दुर्दशा होगी!

इस तरह प्रार्थना करते-करते चारों चिह्न की रेखाओं का स्मरण कर रहे हैं। श्रीमद् भागवत की सुबोधिनी टीका में श्री वल्लभाचार्य जी का, चारों चरणचिह्नों के प्रति जो भाव है, उन्हें जटायु प्रसंग में भी सुतराम संगत करना चाहिये!

जटायुजी ने वज्र का चिन्तन इसलिये किया कि उनके पाप पर्वत के समान हो गये हैं! वज्र की रेखा का चिन्तन ही उस पाप पर्वत को नष्ट कर देगा। ध्वज का चिन्तन इसलिये किया कि ध्वज का स्वभाव है ऊपर उठना। उन्होंने सोचा, कि मैं पतित हूँ, नीचे गिर चुका हुँ मुझे आपको ऊपर उठाना होगा, अतः ध्वज का चिन्तन किया! और अंकुश का चिन्तन इसलिये करते हैं कि मैं अब अनियन्त्रित हो चुका हूँ। मुझ पर किसी का नियन्त्रण रहा नहीं अतः अंकुश के द्वारा मेरा नियन्त्रण करो। कमल का स्मरण इसलिये किया कि मुझे कमल के समान ही संसार की समस्त वासनाओं से निर्लिप्त बनायें!

अब यहाँ दास की कुछ उत्प्रेक्षायें प्रस्तुत हैं। जटायुजी ने वज्र का स्मरण इसलिये किया कि अब आपके चरणारविन्द को पाकर वज्रपाणि के समान मैं अजेय हो जाउंगा। अब यमराज का कुछ भी जोर मेरे ऊपर नहीं चलेगा!

ध्वज का स्मरण इसलिये कर रहें कि जैसे ध्वज ऊपर जाता है उसी प्रकार अब मुझे ऊपर जाना है। सुरधाम नहीं हरिधाम! क्योंकि सुरधाम से तो मैं बीसों बार लौट कर आ गया हूँ।

अंकुश का स्मरण इसलिये किया कि महाराज ! मेरा स्वभाव बड़ा ही उच्छृंखल हैं। अंकुश से आप मेरे मन को नियन्त्रित कर अपनी ओर खींच लें !

कंज का स्मरण इसलिये कर रहे हैं कि कमल के पास जैसे भँवरा आता है वैसे ही कमल का चिन्तन करते करते मैं कमलवत् बन गया हूँ और आप भ्रमर रूप बनकर शीघ्र ही मेरे पास आओ।

अथवा जीव के पास चार अन्तःकरण हैं ! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार !

जटायुजी वज्र के चिन्तन से अहंकार रूप पर्वत को नष्ट करना चाहते हैं। तथा बुद्धि का विषय वासना के कारण पतन हो रहा है, अतः उसे उर्ध्वगामी करने के लिये ध्वजा का चिन्तन कर रहे हैं। अंकुश का स्मरण इसलिये कर रहे हैं कि जीव का मन यह हाथी जैसा है।

मन करि अनल विषय बन जरई। होहि सुखि जो एहि सर परई ।।

यह मन हाथी के समान विषयरूपी बन में जल रहा है। मन बड़ा हठी है, निरन्तर सीख देने पर भी किसी की भी बात मानता नहीं, यह अतिशय प्रबल तथा अजय है।

अतः गोस्वामी जी विनयपत्रिका में कहते हैं। कि—

मेरो मन हरिजु हठ ना तजै ।।
निसिदिन नाथ देउ सिख बहुविधि, करत सुभाव निजै ।।

इस मन रूप हाथी को कौन वश में कर सकता है ?

महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुश खर्व ।।

इस महामत्त हाथी को अंकुश ही वश कर सकता है।

गीताजी में अर्जुन ने पूछा भगवान् से !

चंचलं हो मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।

हे श्रीकृष्ण ! यह मन बलवान्, दृढ़ तथा मंथन करने वाला

अत्यन्त चंचल है। उसे वश में करना, पवन को रोकने जैसा दुष्कर है।

भगवान ने कहा कि,

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

हे महाबाहो! यह मन चंचल एवं वश करने में कठिन है इसमें कोई शंका नहीं किन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा इसे वश में कर सकते हैं।

यहाँ अभ्यास क्या है? भगवान् ने एक बात गुप्त रखी "मत् चरणारविन्दांकुशध्यानरूपाभ्यासेन" मेरे चरणारविन्द की अंकुश रेखा का ध्यान करो यही अभ्यास है। उसी अभ्यास के द्वारा मन रूपी हाथी वश में हो जायेगा!

जटायुजी कमल का सुमिरन इसलिये करते हैं कि मेरा यह चित्तरूप भँवरा आपके चरणकमल की कमल रेखा में आसक्त हो जाय! अथवा मेरे इस कठोर चित्त में जो दुर्वासना की दुर्गन्ध है वह समाप्त हो जाय और कमल की कोमलता तथा सुगन्ध इसमें आ जाय!

अतः सुमिरत राम चरण चिन्ह रेखा।

श्रीराघवेन्द्रजी के चरणचिह्नरेखाओं का स्मरण कर रहे हैं!

जीव को पतित करने के लिये चार प्रकार की कामनायें होती हैं। हमारे यहाँ तो मुक्ति को भी पिशाचिनी माना गया है।

"भुक्तिमुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।।"

जब तक मुक्ति की इच्छा रूपी पिशाचिनी वर्तमान है, तब तक भक्ति का सुख हृदय में नहीं आ सकता!

भक्त कहता है कि आप हमें स्वर्ग में रखिये या नरक में, बस आप मुस्कुराया करें हमें आनंद आ जायेगा। "रातभर गीत गाते रहें हम, तुम अगर मुस्कुराते रहोगे।"

मिथिलानियों ने बहुत सुन्दर कहा है, जब भगवान् मिथिलानियों

पर प्रसन्न हुए और कहा, आज आप जो चाहोगे वह हम देंगे। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष जो चाहिये वह हमसे ले लो !

मिथिलानीयों ने कहा कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष हमें कुछ भी नहीं चाहिये क्योंकि अर्थ लेकर हम अनर्थ नहीं करना चाहतीं ! और मिथिला में अर्थ की कोई कमी नहीं है।

जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा ।।

धर्म भी हम नहीं चाहते क्योंकि हम सभी धार्मिक हैं।

पुर नर नारी सुभग सुठि संता। धर्म सील ज्ञानी गुनवन्ता ।।

काम का भी हम क्या करेंगे ? क्योंकि हम तो स्वयं आपके ऊपर से कोटि कामदेव को न्योछावर करते हैं।

अंग अंग प्रति वारिये, कोटि कोटि सतकाम ।।

मोक्ष तो हमें करतलगत है वह हमारे बल पर सिद्ध है। क्योंकि हम ज्ञानी हैं "धर्मसील ज्ञानी गुनवन्ता" अतः हमें मोक्ष भी नहीं चाहिये !

और दूसरी बात यह कि आप यहाँ के दामाद हो। दामाद से कुछ लिया नहीं जाता, उन्हें तो दिया जाता है। हम आपको देंगे या लेंगे आपसे ?

भगवान् ने कहा कि आज मैं मेहमान नहीं भगवान् बनकर कह रहा हूँ।

मिथिलानियों ने कहा कि यदि भगवान् बनोगे तो गारी सुनने को नहीं मिलेगी। गारी सुननी हो तो मेहमान बन कर रहिये।

होते भगवान् तो सुनाती बेद रिचा तुम्हे।
बने मेहमान तो फिर गारी अब सुनिये ।।

एक सखी ने कहा कि अरी सखि ! खबरदार, पुरुषोत्तम को गारी कैसी ? तो उसने जवाब दिया, कि गारी बिनु ससुरारी कैसी ? ये मंदिर में नहीं बैठे हैं ससुराल में हैं।

तो भगवान् ने कहा कि तुम हमें गाली दे रही हो !!!

मिथिलानियों ने कहा गाली नहीं गारी दे रही हैं।

अमिय गारि गार्यो गरल, गारि कीन्ह करतार।
बैर प्रीति की जननि जग, जानहि बुध न गँवार ।।

यह गारी तो अमृत को गार कर बनाई है। इसे गँवार लोग नहीं जानते। अतः नाराज हो जाते हैं। 'गिरियते इति गारी" जो अमृत को गार कर बनाई जाती है।

तब राघवेन्द्र ने कहा भले हम पाहुन है फिर भी भगवान् है, कुछ तो हम से माँग लो।

मिथिलानियों ने कहा हम और कुछ नहीं चाहतीं, केवल इतना ही चाहती हैं कि—

नाहि हमरा चाहि पाहुन पद निर्वान है।
हमका तो चाहि केवल मंद मुसुकान है।

हमें तो केवल तुम्हारी मन्द-मन्द मुस्कान चाहिये।

इसी तरह वैष्णव के जीवन में किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं होती, वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष कुछ नहीं चाहता।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहऊँ निर्वान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन।।

जटायुजी जानते हैं कि ये चारों वस्तुएँ हमें दुःख देंगी। अतः कहा कि महाराज ! हमारे मन में धन की लालसा पर्वत के समान बढ़ी हुई है उसे अपने वज्र के चिह्न से कुचल दो। तथा ध्वजा यह धर्मध्वजा है। यथा—

इन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धंधक धोरी।।

अपने चरणकमल के ध्वज से मेरे मन में ध्वजायमान जो धर्म की वासना है, उसे समाप्त कर दो। वह धर्म मेरे किस काम का ?

सो सुख करम धरम जरि जाउँ। जहँ न राम पद पंकज भाउँ।।

तथा हे प्रभो ! मेरे मन में काम याने तृष्णा बहुत बढ़ गई है। शरीर वृद्ध हुआ किन्तु तृष्णा वृद्ध नहीं हुई।

ममता तू न गई मेरे मन ते।
पाके केस जनम के साथी बल सब गये इन्द्रिन ते।
टूटे दसन बचन नहीं आवत सोभा गई मुखन ते।।

श्रवनन बचन सुनत काहू की ज्योति गई नैनन ते।
तन थाके कर काँपन लागे शक्ति गई चरनन ते।।

कफ पित बात कंठ पर बैठे सुतहि बुलावत कर ते।
भाई बन्धु जे परम पियारे, नारि निकारत घर ते।।

जैसे शशिमंडल बिच स्याही, छूटे न कोउ जतन ते।
तुलसीदास प्रभु आस चरन की, लोभ पराये धन ते।।

यह गोस्वामी तुलसीदासजी का मुक्तक छन्द है। यह ममता याने कामना रूपिणि हस्तिनी को हे प्रभु! आप अपने चरण के अंकुश चिन्ह से नियन्त्रित कीजिये। तथा मेरा मन कमल चिन्ह मधुकर बन जायेगा तो मोक्ष की भी इच्छा नहीं रहेगी।

अथवा जटायुजी ने अपने मन में रहे हुए काम, क्रोध, लोभ एवं मोह का नाश करने के लिये, क्रम से धर्मध्वज से कामनाश के लिये, वज्र से क्रोध को नष्ट करने के लिये, अंकुश से लोभ को वश में करने के लिये तथा कमल जैसे निर्लिप्त रहता है वैसे ही मोह से अपने मन को निर्लेप बनाने के लिये कमलादि चिन्हों का स्मरण किया।

आनन्दकन्द भगवान् श्रीराघवेन्द्र का दर्शन जटायुजी ने किया अब दर्शन के बाद पर्शन भी होना चाहिये! अतः

कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर।।

कृपासिन्धु श्रीराघव ने अपने कर कमल से उनके सिर का स्पर्श किया। श्रीरामजी की मुख छवि का दर्शन करते-करते उनकी सभी पीडा दूर हो गई।

मानो जटायुजी गा उठे।

सुनिये विनय रघुकुल वीर।
दीनबन्धु उदार आरत, हरन जनकी पीर।।

रुदन सीय श्रकनि धायो, दनुज पर धरि धीर।
करि समर पर्यो भूमि पर, बस पंख हीन अधीर।।

सीय हरि लै गयो दससुख, गगन बेगि समीर।
राम कहि रोवति अति, नहीं सँवारत चीर।।

बचन सुनि अवलोकि खग प्रभु, स्रवत लोचन नीर।
बैठि "गिरिधर" प्रभु उछंगहि, गीध तज्यो शरीर ।।

भगवान् के सामने दो पक्ष हैं। एक ओर तो सबसे उच्चकोटि का व्यक्ति है और दूसरी ओर सबसे अधमकोटि का व्यक्ति। उत्तम कोटि के व्यक्तित्व में अहल्या का नाम स्मरणीय है। जो अचिन्त्य सुन्दरी एवं जिनका नाम पंच कन्याओं में सर्वप्रथम लिया जाता है।

अहल्या मन्दोदरी तारा, कुन्ती द्रौपदीस्तथा।
पंचकन्याः स्मरेन्नित्यं, महापातकनाशनम् ।।

अहल्याजी अत्यन्त सुन्दरी है, साक्षात् ब्रह्माजी ने इनको मन से बनाया है ये गौतमजी की पत्नी हैं, श्रीदशरथजी के मन्त्री की पत्नी तथा जनकजी के पुरोहित की माता बनने का इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इतना ऊँचा स्थान होने पर भी भगवान् ने इनके ऊपर तो पद-सरोज का स्पर्श किया।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जनसुखदायक सनमुख होई कर जोरि रही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा, मुख नहि आवइ बचन कही।
अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी, जुगल नयन जलधार बही ।।

अहल्याजी को भी कष्ट है और इधर जटायुजी को भी कष्ट है। अहल्याजी पत्थर बन चुकी हैं, उसी प्रकार जटायुजी के भी पंख कट चुके हैं। दोनों गतिहीन हो चुके हैं। किन्तु भगवान् ने अहल्या के सिर पर अपने चरणकमल का स्पर्श किया। यथा—

सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपालु हरि।

किन्तु यहाँ पर भगवान् जटायुजी को अहल्या से भी अधिक पूज्य मानते हैं। अतः पदसरोज का स्पर्श नहीं किया।

"कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुवीर।"

विचित्रता यह है कि जिसके ऊपर पद सरोज का स्पर्श किया वह और जिसके ऊपर कर सरोज का स्पर्श किया, वे दोनों भी भूत, भविष्य, वर्तमान जान गये। क्योंकि भगवान् के सम्पूर्ण अङ्ग आनंद-मय है "चिदानन्दमय देह तुम्हारी" "आनंदमात्रकरपादशिरो-

दरादि" जैसे शक्कर के बनाये हुए घोड़े के हाथ, पैर, सिर सभी शक्कर के होते हैं। उसी प्रकार भगवान् के सकल अंग आनन्दमय हैं। इसलिए चाहे चरण का स्पर्श करें या कर का, वहाँ आनन्द ही आनन्द है।

जब अहल्याजी के शीष पर भगवान् के पद सरोज का स्पर्श हुआ तो उन्होंने कह दिया कि

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन, रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भवभय मोचन, पाहि पाहि सरनहि आई॥

अहल्याजी कह रही हैं कि मैं सहज ही अपवित्र स्त्री हूँ और हे प्रभो! आप जगत् को पवित्र करने वाले भक्तों को सुख देने वाले तथा रावण के शत्रु हो। हे कमलनयन! हे जन्म मृत्यु रूप संसार से छुड़ाने वाले मैं आपकी शरण में आई हूँ। मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये।

यहाँ जटायुजी भी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं कि

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥

इन दोनों ने भी रावणवध की भविष्यवाणी कर दी।

भगवान् की यह विशेषता है कि ब्राह्मणकुल की अहल्या की अपेक्षा अधमकुल के गीधराज को अधिक मान दे रहे हैं। अहल्या पर थोड़ी सी कृपा की। केवल कृपा के बिन्दु को टपकाया। परन्तु जटायुजी के ऊपर मानो आज लगता है कि पूरे कृपा के सिन्धु को अपने हाथ में लेकर उनके सिर पर उडेल दिया। "करसरोज परसेऊ" परसेऊ का एक अर्थ होता है स्पर्श करना और दूसरा अर्थ होता है परोसना।

सूपोदन सुरभि सरपी, सुन्दर स्वाद पुनीत।
छनमहँ सब कहँ परसिगे, चतुर सुवारविनीत॥

मानो आज रामचन्द्रजी ने जटायु के सिर पर अपने कर कमल से अपने कृपा के सिन्धु को ही परोस दिया।

"कर सरोज सिर परसेउ"

तो पूछा गया कि सिर पर ही क्यों परोसा ? मुख में क्यों नहीं परोसा ?

इसलिए कि मुख में परोसने से गड़बड़ हो जायेगी। जैसे सिर पर तेल डालने से मस्तिष्क में ठंडक लगती है। तेल का दूसरा नाम है स्नेह। ऐसे ही स्नेह हमेशा सिर से पिलाया जाता है। वैसे ही सिर पर परोस दिया जिससे अन्दर बाहर दोनों ओर आनन्द आवे। क्योंकि समुद्र को पिलाया नहीं जाता उसमें तो नहलाया जाता है। और नहलाने के समय सिर को ही प्रथम भिगोया जाता है। अतः भगवान् ने उनको कृपा के सिन्धु में स्नान करा दिया।

कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर ।।

करसरोज के स्पर्श से जटायु को तीन लाभ हुए। क्योंकि भगवान् के स्पर्श में यह गुण है।

सीतल सुखद छाह जा करकी, मेटति पाप ताप माया।
निसिबासर तेहि कर सरोज की तुलसीदास चाहत छाया ।।

(विनयपत्रिका १३७)

इसलिये भगवान् ने अपने करकमल का स्पर्श करके जटायुजी को छाया दे दी। जटायुजी पृथ्वी पर पड़े हैं, सूर्य की प्रबल धूप आ रही है; सूर्य नारायण की किरणें मानो जटायुजी को प्रणाम कर रही हैं। भगवान् ने सोचा कि इनको धूप लग रही होगी अतः लो जिनके संकल्प मात्र से करोड़ों-करोड़ों मेघों का जन्म होता है वही कृपा का मेघ अपने करकमलरूप महामेघ आप के सिर पर छाया किये हुए हैं। अब आपको संसार का पाप ताप नहीं लगेगा। अब आपको संसार की माया स्पर्श नहीं करेगी! अतः "कर सरोज सिर परसेउ।"

भगवान् कर सरोज का स्पर्श करके अभयदान दे रहे हैं, आश्वासन दे रहे हैं, उस कोमल स्पर्श से जटायुजी को कितना आनंद आया होगा!

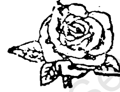
कहते हैं कि सबसे कोमल कमल होता है, उस कमल से भी कोमल कमला है क्योंकि वह उसके ऊपर आरूढ़ होती है। कमला से भी कोमल कमला के करकमल और जब लक्ष्मीजी अपने उन कोमल-कोमल करकमल से भगवान् के श्रीचरणों का स्पर्श करती

हैं तो उनको पीड़ा होती है यथा "प्रियाया: पाणिस्पर्शक्षमाभ्याम्" अत: कमला के करकमल से भी भगवान् के चरणकमल अधिक कोमल हैं। और भगवान् के चरणकमल से भी कोमल हैं उनके मंजुल-मंजुल करकमल! उन कोमल कोमल कर कमलों से भगवान् ने जब जटायु का स्पर्श किया होगा तो कितनी प्यारी अनुभूति जटायु जी को हुई होगी? इसका वर्णन नहीं हो सकता। अत:

कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भइ सब पीर।।

रघुनाथजी के स्पर्श से और श्रीरामजी के दर्शन से जटायुजी की सारी पीड़ा दूर हो गई!

।। इति शम्।



॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

पंचम प्रसून

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहम् ।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशम् ।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥

हरिं पश्यन् दृग्भ्यामनुजसहितं वल्कलधरम् ।
श्रुतिभ्यां पीयूषं रघुवरमुखेन्दो परिगतम् ।
पिबन् नक्ते तिष्ठन् भुवनभयहर्तुर्निजगुणे ।
जटायुर्धन्यायुः सकलमतिशेते गुणिगणम् ॥

कहँ अंगद बिचारि मन माही । धन्य जटायू सम कोउ नाही ।
राम काज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम बड़भागी ॥

श्रीमन् निसर्गसुन्दर, मैथिलीरमण, भक्तवत्सल, सकलसुजन-वांच्छाकल्पतरु, रावणरिपु, करुणानिधान, श्यामसुन्दर, राजाधिराज श्रीमान्, मर्यादापुरुषोत्तम, महाराज, श्रीसार्वभौम रामभद्रजु की भुवनपावनी असीम कृपा से अनायास ही प्राप्त श्रीरामकथा मंदाकिनी में स्नान कर, हम अपने अनादिकाल से सन्तप्त मन को शीतल करने जा रहे हैं ।

जटायुजी भगवान् श्रीरामजी के चरणचिह्न रेखाओं का स्मरण कर रहे थे, उसी समय राघवेन्द्र ने गीधराज को देखा और अपने कर सरोज के स्पर्श से उसकी सारी पीड़ा दूर कर दी ।

जटायुजी और भरतजी के स्मरण में थोड़ा अन्तर है । भरतजी चरणचिह्न रेखाओं की रज को अपने आँखों से तथा हृदय से लगाते हैं ।

चरन रेख रज आंखिन्ह लाई । कहत न बनइ प्रीति अधिकाई ॥

चरणों की रेखा का स्मरण जटायुजी कर रहे हैं। यहाँ पूछा जा सकता है कि चरणों का स्मरण न करके चरणचिह्नों की रेखाओं का स्मरण क्यों करते हैं ?

इसलिये कि रेखाओं का चरणों से सम्बन्ध है। जहाँ-जहाँ चरण होंगे वहीं वहीं रेखायें होंगी ! और जब रेखा का स्मरण होगा तब रेखायुक्त चरणों का स्मरण होगा ही। बहुत सोच कर जटायुजी ने रेखाओं का स्मरण किया है।

भरतजी पादुका की सेवा करते हैं, यह सोच कर कि सतत चरण, पदत्राण के पास जाते हैं, न कि पदत्राण चरण के पास ! अतः यदि मेरे पास पादुका है तो भगवान् के चरणों को उनके पास आना ही होगा।

किन्तु जटायुजी ने सोचा कि पादुका को चरणों से कभी कभी अलग भी किया जा सकता है, पर चरणों की रेखा, चरणों से कभी भी अलग नहीं हो सकती। अतः रेखा जहाँ होगी वहाँ चरण होंगे ही ! इसलिये रेखाओं का स्मरण कर रहे हैं ! भगवान् ने अपने कोमल कोमल करसरोज से उनके सिर का स्पर्श किया ! इसलिये कि

जगत् विधेयं सचराचरं तं, भवान् विधेयो भगवन् कृपायाः।
सादीनताया नमतां विधेया, मया प्रयत्नोपनतैव सापि ।।

सारा संसार भगवान् के वश में है ! और भगवान् अपनी कृपा के वश में हैं ! तथा भगवान् की कृपा भक्तों की दीनता के वश में है।

आज जटायुजी के मन में इतनी दीनता आई कि भगवान् अपने कृपासिन्धु को संभाल न सके और सम्पूर्ण कृपासमुद्र को उड़ेल दिया ! भगवान् ने कृपा समुद्र से कहा कि आज तुम इतना सिमट जाना कि जटायुजी के शरीर में जा सको किन्तु जटायु को डुबोना नहीं बल्कि तुम्ही उनमें डूब जाना। तात्पर्य यह है कि जटायुजी के हृदय में इतना विशाल दैन्यसागर लहरा रहा है कि उस दैन्यसागर में भगवान् का कृपासागर डूब गया ! आज सागर में सागर डूब गया।

कर सरोज सिर परसेउ कृपा सिंधु रघुवीर।
निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर ।।

जटायुजी ने एक बार भरलोचन, राजीवलोचन के मंगलमय कोटि कोटि शारदीय शर्वरीशसौन्दर्यसारसर्वस्व सार्वभौम निंदक मुख को निहारा तो सारी पीड़ा समाप्त हो गई।

इस श्रीमुख की एक विशेषता है कि इस छबि को बार बार निहारा करें, कभी जी भरता ही नहीं।

अभी हमने जी भरके देखा नहीं है, अभी हमने जी भरके देखा नहीं है।

आँखे तृप्त नहीं होतीं। एक बार आँखों के अवयवों में जोरदार झगड़ा हो गया!

रघुनाथ बिलोकि लिये जब ते, निज देह न गेह सँवारन दे।
धरि धीरज बोलि उठी बरुनी, पद नीरज तें रज झारन दे।
पुतरी कहे मारग से हठिजा, अँसुवा कहे पाँव पखारन दे।
पलकें कहे मूदि ले राघव को, अँखियाँ कहें और निहारन दे॥

जटायुजी के नेत्रों को तृप्ति नहीं होती।

निरखि राम छबिधाम मुख, बिगत भई सब पीर॥

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जटायुजी ने रामजी के मुख की ओर क्यों देखा? देखना चाहिये था चरणों की ओर क्योंकि वे चरणों का ही स्मरण कर रहे थे।

इसका समाधान यह है कि जटायुजी वात्सल्यभाव के उपासक हैं। वात्सल्यभाव में बच्चे का चरण नहीं देखा जाता, मुख ही देख कर आनन्द लिया जाता है। जैसे मा कौशल्या:—

धरि धीरज सुत बदन निहारी। गद्गद् बचन कहति महतारी॥

प्रथम दर्शन के समय मनु शतरूपा भी भगवान् के मुखकमल को ही देखते हैं।

सरद मयंक बदन छबि सींवा, चारु कपोल चिबुक बर ग्रीवा॥

अतः जटायुजी मुखकमल की ओर देखते हैं। दर्शन से ही पीड़ा दूर हो गई! क्योंकि पीड़ा प्रारब्ध से होती है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं। प्रारब्ध, क्रीयमाण और संचित! इन तीनों कर्मों को जलाना है। जटायुजी ने सोचा प्रथम मैं अपने कर्मों को जलादूँ फिर मेरे शरीर को रामजी जलायेंगे। और कर्मों को जलाने के लिये अग्नि चाहिये। अग्नि खोजने लगे कहीं भी अग्नि नहीं मिली। भगवान् के मुख की तरफ देखा। तो अग्नि वहीं वर्तमान है।

आनन अनल अम्बुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ।।

वेद में भी कहा है कि

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।

शुक्ल यजुर्वेद ३१।१२

जिनके मनसे चन्द्रमा का, नेत्र से सूर्य का, कान से वायु एवं प्राण का तथा मुख से अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ है।

अतः उस अग्नि में मानो जटायुजी ने "रामाय स्वाहा कहकर प्रारब्धकर्म को हवन कर दिया। "रामभद्राय स्वाहा" कहकर क्रियमाण कर्म को हवन कर दिया। तथा "रामचन्द्राय स्वाहा" कह कर संचित कर्म को हवन कर दिया।

अब वे तीनों कर्मबन्धन से विमुक्त हो गये! जब कर्मबन्धन ही नहीं रहा तो कर्मजनित पीड़ा भी कैसे रहेगी! अतः

निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ।।

हवन करने के लिये स्रुवा चाहिये। जटायुजी ने अपनी आँखों को ही स्रुवा बनाया। हवन में एक ओर से घी और दूसरी ओर से आहुति सामग्री का हवन होता है। अतः जटायुजी दक्षिण नेत्र से तो भगवान् के प्रेमरूप घी का हवन करते हैं और वाम नेत्र से अपने कर्म की सामग्री का हवन करते जा रहे हैं!

रामचन्द्रजी के मुखचन्द्र में अब आँखें लग गईं तथा पीड़ा दूर हो गई।

यहाँ पूछा जा सकता है कि पीड़ा का सम्बन्ध किससे है? तो न्याय दर्शन में जहाँ सात पदार्थों की व्यवस्था है, उन सात पदार्थों में से द्रव्य प्रथम पदार्थ है। उस द्रव्य के भी नौ भेद न्यायशास्त्र ने स्वीकारे हैं! नौ भेदों में मन नौवाँ द्रव्य है। मन की व्याख्या न्याय दर्शन में इस प्रकार की है।

"सुखदुःखाद्युपलब्धिकारणमिन्द्रियं मनः"

सुख, दुःख आदि की उपलब्धि का कारण मन है। मन ही सम्पूर्ण संसार का बन्धन है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषया संगी मोक्षे निर्विषयं तथा ।।

ये मन विषयों का चिन्तन करके जीवों को बंधन देता है और ये ही मनमोहन का चिन्तन करके जीव को मोक्ष देता है। आज भी संत महात्मा कहते हैं कि

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
परब्रह्म को पाइये, मन ही की परतीत।।

जटायुजी सोच रहे हैं कि ये पीड़ा कैसे नष्ट होगी ? तो जब तक यह मन रहेगा, तब तक पीड़ा नष्ट नहीं होगी ! अतः किसी भी प्रकार से इस मन का तन से सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। यह मेरा न रहे वही ठीक है ! मन को अपने देवता से राग होता है। मन के देवता हैं चन्द्रमा। रामजी का मुख भी चन्द्रमा है। जटायुजी ने अपने नेत्रों से रामचन्द्रजी के मुख को देखकर, नयनों के माध्यम से मन को उसके देवता चन्द्रमा को समर्पित कर दिया। अर्थात् जटायुजी की मनोवृत्ति अब आनंदकन्द भगवान् के मुखचन्द्र की सुधा का पान करने में तल्लीन हो गई और जब मन का तन से सम्बन्ध ही टूट गया तो फिर पीड़ा का बोध ही समाप्त हो गया।

जैसे जनकपुरवासियों की मनोदशा का वर्णन करते हुए श्रीगोस्वामिपाद कहते हैं कि—

राम दरस लालसा उछाहू, पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू।
मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही।।

श्रीरामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्रीराम और जानकी हैं। बिना मन के शरीर के सुख दुःख की सुध किसको हो ?

कुछ अर्वाचीन संतमत के प्रवर्तकों ने कहा कि "मन को मार डालो" पर यह बात शास्त्रविरुद्ध होने से वैष्णव संतों को नहीं जँचती ! हमें मन को मारना नहीं अपितु तारना है। मन को मारेंगे नहीं मन को संवारेंगे ? कहा गया है कि मन बहुत ज्यादा खुरापात करता है, तो पशु यदि छूटा होगा तभी चंचलता करेगा अतः उसे बांध दो !

विभीषण जी ने कहा कि ऐसा सुदृढ खूंटा कहाँ से ले आयें ? क्योंकि सामान्य खूंटे को तो वह तोड़ कर फेंक देगा ! इसके लिये तो एक ऐसा खूंटा चाहिये जिसकी जड़ बहुत नीचे तक गई हुई हो।

तब भगवान् ने कहा कि "पद पाताल सीस ग्रज धामा" मेरा पग बहुत बड़ा खंभा है और उसकी जड़ पाताल में है, उसे वह उखाड़ सकेगा ही नहीं। इसलिये अपने मन को मेरे चरण से बांधो। विभीषण जो ने पूछा रस्सी कौन सी ले आऊँ ? क्योंकि सामान्य रस्सी तो ये तोड़ देगा।

भगवान् ने कहा—कि एक रस्सी में दस फेरे कर दो और फिर दस बन्धनों को जोड़कर एक रस्सी बनाओ।

ये दस रस्सियाँ कहां मिलेगी ?

भगवान् ने कहा—

जननि जनक बन्धु सुत दारा, तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधि बर डोरी ॥

भाव यह है कि दसों ममतायें राघवेन्द्र के चरणों में अर्पित कर दी जायें ! तब यह मन अपने आप प्रभु का दास हो जायेगा !

मन यह तो भगवान् का मंदिर है, यदि मंदिर को ही तोड़ देंगे तो भगवान् रहेंगे कहाँ ?

सब कर मागहि एक फल रामचरन रति होय।
तिनके मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोऊ ॥

मंदिर को स्वच्छ रखना चाहिये और यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई बदमाश इसमें घुस न पाये !

अतः इस मन को मन के देवता चन्द्रमा को ही सौंप दे सामान्य चन्द्रमा इसे संभाल नहीं सकेगा। विनयपत्रिका में कहा है कि—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुणम्।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पदकंजारुणम् ॥

हे मन ! तू श्रीरामचन्द्रजी को भज। रामजी चन्द्र हैं, चौबीस अवतारों में किसी के भी नाम के साथ चन्द्र जुड़ता नहीं।

श्रीकृष्णचन्द्र औपचारिकता से हम लोग कह लेते हैं।

न्यायत: श्रीमद्भागवतजी में श्रीकृष्णचन्द्र ऐसा प्रयोग नहीं हुआ ! परन्तु रामजी के लिये अनेक जगह प्रमाण है।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

रामजी के नाम से सूर्य, अग्नि ये कुछ भी नहीं जोड़े गये, केवल चन्द्रमा ही जोड़ा गया।

यदि सोचा जाय तो रामजी सब कुछ हैं, कभी कभी वे सूर्य भी बन जाते हैं और कभी कभी अग्नि भी, पर वे चन्द्रमा निरन्तर बने रहते हैं। ज्ञानियों के लिये रामजी सूर्य हैं, कर्मकाण्डियों के लिये वे अग्नि हैं तथा उपासकों के लिये वे चन्द्र हैं !

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

गीता २।६९

जो सर्वप्राणियों के लिये रात्रि है उसमें संयमी पुरुष जगता है और जिसमें सर्वप्राणी जगते हैं वह मुनियों के लिये रात्रि के समान है।

संयमी को रात्रि चाहिये और रात्रि की शोभा चन्द्र से होती है।

राका रजनी भगति तव, राम नाम सोई सोम ।
अपर नाम उडुगन बिमल, बसहु भगत उर व्योम ॥

श्रीराम, चन्द्र बनकर प्रेमी कुमुद को विकसित करते हैं। सूर्य बन कर, ज्ञानी कमल को प्रफुल्लित करते हैं। तथा अग्नि बन राक्षसों के बन को जलाते हैं।

चन्द्र का जन्म होता है समुद्र से !

जनम सिन्धु पुनि बन्धु विष दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि चन्द बापुरो रंक ॥

जनम सिन्धु—चन्द्र का जन्म समुद्र से होता है। वैसे ही रामचन्द्र का जन्म अवधरूप समुद्र से होता है।

रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई । उमगि अवध अम्बुधि कहँ धाई ॥

ऋद्धि सिद्धि रूप सभी नदियाँ अयोध्या रूप समुद्र की ओर उमड़ उमड़ कर दौड़ रही हैं। यहाँ अयोध्या ही समुद्र है।

पुनि बंधु बिष:—चन्द्रमा का भाई विष है।

रामजी के भी बंधु के लिये परशुरामजी कहते हैं कि—

बोले रामहि देइ निहोरा। बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा।
मनु मलीन तनु सुन्दर कैसा। विष रस भरा कनक घटु जैसा॥

दिनमलीन:—चन्द्रमा दिन में मलीन रहता है।

उसी प्रकार—

नारि कुमुदिनी अवधसर रघुपति बिरह दिनेश।
अस्त भये बिगसत भईं निरखि राम राकेश॥

रामजी का वियोग दिनेश है तथा रामजी के मिलन की अवस्था ही दिवस है। भक्तिरूपी रात्रि के अभाव में रामरूप चन्द्रमा भी स्पष्ट नहीं दिखाई देता। "राका रजनी भगति तव" भक्ति रूपी पूर्णिमा की रात्रि को पाकर ही चमकता है।

सकलंक:—यह विशेषण रामजी के लिये उपादेय नहीं है। रामजी चन्द्र हैं किन्तु निष्कलंक चन्द्र हैं। सकलंक नहीं। हाँ कलंक का दूसरा अर्थ है कालिमा "कलंक: कालिमा स्मृत:" तो रामजी श्याम हैं ही।

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहि तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

रामजी का प्रकाश चन्द्रमा के समान शीतल है और प्रताप सूर्य के समान तेजस्वी है। किन्तु प्रकाश के साथ-साथ प्रेम की श्यामता भी वहाँ उपस्थित है। "प्रेमा श्याम:" प्रेम का रंग श्याम बताया गया है।

घटइ बढइ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥

घटहि बढ़ई:—चन्द्रमा घटता है बढ़ता है।

राम रूप चन्द्र भी कभी छोटा हो जाता है तो कभी बड़ा हो जाता है। "अणोरणीयान् महतो महीयान्"

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।।

वे परब्रह्म सर्वव्यापक, बृहद्, निरंजन, निर्गुण, विनोद रहित एवं अजन्मा होते हुए भी प्रेम और भक्ति के वश होकर कौशल्याजी की गोद में खेल रहे हैं।

मा ने प्रार्थना की तो इतने छोटे हो गये कि

कबहु उछँग कबहु बर पलना। मातु दुलारहि कहि प्रियललना ।।

इसीलिये कौशल्याजी ने इनका नाम राघव रखा।

दलयोर्ड़रयोश्चैव सशयोर्बवयोस्तथा।
वन्दन्त्यभेदमेतेषां, अलंकारविदोजनाः ।।

अलंकार जानने वाले "ल" और "र" में ड् तथा ड़ और द में "स" और श तथा "ब" और "व" में अभेद मानते हैं। अतः प्रथम लाघव शब्द था, लाघव अर्थात् छोटा। "लघुरेव लाघवः" तो इसी "ल" को कौशल्याजी ने "र" कर दिया याने रघुकुल में उत्पन्न और बहुत छोटा। अतः ये घटई याने छोटे हो जाते हैं।

बढ़ई:—

दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।।

जैसे चन्द्रमा बढ़ता है वैसे रामजी भी बढ़ते हैं।

बिरहिनि दुख-दाई:—चन्द्रमा विरहिणि को दुःख देने वाला है।

श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव सबको सुख देने वाला है।

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाव सबहिं सुखदाता ।।

किन्तु विरहिणी वैदेही को राम रूप चन्द्रमा कष्ट देता है।

राम सुभाउ सुमिरि वैदेही। उपजो बिरह व्यथा अति तेही ।।
निसिहि ससिहि निन्दत बहु भाँति। भये जुग सरिस सिराति न राति ।।

ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई:—संधिकाल को प्राप्त होते ही राहु ग्रह चन्द्रमा को ग्रस लेता है।

उस प्रकार राम रूप चन्द्रमा को कैकेई के समीप बुलाया गया।

आनहु रामहि बेगि बुलाई। समाचार सब पूछहु जाई।।

आज कैकेयी के कर्तव्य रूप राहु ने अपनी संधि में पाते ही ग्रसना प्रारम्भ कर दिया।

"ग्रसई न कैकई करतब राहु" वनवास दिया गया। प्राची दिशा याने कौशल्याजी से उनका वियोग हुआ। चौदह वर्ष तक अयोध्या में चन्द्र ग्रहण लग गया।

कोक सोक प्रदः—चन्द्रमा चकोर के लिये शोकप्रद है। श्रीराम-रूप चन्द्रमा भी राक्षस रूप कोक-कोकी के लिये शोकप्रद है।

पंकज द्रोहीः—चन्द्रमा कमल का द्रोही है। चन्द्र उदित होते ही कमल बंद हो जाता है। उसी प्रकार श्रीराम रूप चन्द्र के प्रकट होते ही दुष्ट राक्षस रूप कमल वन नष्ट हो जाते हैं।

प्रगटेऊँ जहँ रघुपति ससि चारु। बिश्वसुखद खल कमल तुषारु।।

चन्द्रमा को हरिणवाहन चाहिये तो सीताजी ने कहा मेरे नेत्र ही हरिण बन जायेंगे।

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।

द्वितीया के चन्द्रमा को शिवजी अपने मस्तक पर धारण करते हैं और रामचन्द्र को हृदय में धारण करते हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीराम चन्द्रमा हैं और मन का देवता भी चन्द्रमा है। इसलिये मन को उसके देवता चन्द्रमा को सौंप दो, जिससे मन उनका ही भजन करेगा।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भवभयदारुणम्।

मन ने कहा, मैं भँवरा हूँ, मुझे पराग चाहिये। मन से पूछा गया कि तुम कितने कमल पर जाते हो? मन ने कहा मैं दिन के चार प्रहर तक घूमता रहता हूँ। तब गोस्वामीजी ने उससे कहा कि चार प्रहर तक घूमने के लिये तुम्हें चार कमल दे देते हैं।

नव कंज लोचन कंजमुख कर कंज पद कंजारुणम्।।

नेत्रकमल, मुखकमल, करकमल तथा पदकमल ये ही तुम्हारे विश्राम स्थल हैं।

मन ने कहा कि मैं वहाँ अकेला नहीं जाऊँगा, अपने बेटे को साथ ले जाऊँगा। मन का बेटा है काम।

गोस्वामीजी कहते हैं कि वहाँ तुम्हें एक नहीं अपितु अगणित-अगणित बेटे दिखाई देंगे।

कन्दर्प अगनित अमित छबि नव नील नीरद सुन्दरम्।

मन ने कहा, मुझे नाचने का मन हो रहा है तो कहाकि "नव नील नीरद सुन्दरम्" तू मोर बन जा क्योंकि श्रीरामजी का श्रीविग्रह नवीन नीले मेघ के समान सुन्दर है।

मन ने कहा कि बादल के साथ जब बिजली होती है और जब बादल गरजते हैं तब मुझे नाचने में बहुत आनन्द आता है तब गोस्वामीजी कहते हैं कि हाँ वहाँ बिजली भी है।

पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुतावरम्॥

भगवान् राघव ने जो सुन्दर पीताम्बर धारण किया है वही बिजली के समान है और एक बिजली जो जानकी हैं वे तो निरन्तर उनके साथ ही रहती हैं।

मन ने कहा:—मैं नाचना चाहता हूँ पर जमीन पर नहीं नाचूंगा। वहाँ कंकड़ आदि चुभ जायेंगे, मैं तो कमल पर नाचना चाहता हूँ। अतः बादल के उमड़ने से सूर्य के ढँक जाने पर कमल खिलेगा नहीं तो मैं कैसे नाच पाऊँगा?

तब श्रीतुलसीदासजी ने कहा कि अच्छा चलो हम तुम्हें सूर्य दिखाते हैं।

भजु दीन बन्धु दिनेश दानव दैत्य वंश निकन्दनम्।

मन ने कहा कि सूर्योदय होते ही कमल विकसित होगा। मैं उसके ऊपर नाचूंगा, पर नाचते समय मुझे बादल का दर्शन तथा क्षुधा शान्ति के लिये सुधा अवश्य मिलनी चाहिये।

तब गोस्वामीजी ने आश्वासन दिया कि प्यारे चिन्ता मत करो। तुझे नर्तन के समय ही श्रीराम में जलधर एवं चन्द्र दोनों की साथ ही अनुभूति होगी।

रघुनन्द आनन्द कन्द कोशलचन्द दशरथ नन्दनम्।

मन ने पुनः आकांक्षा की, कि मुझे नाचते समय श्रीराघवेन्द्र के दर्शन होने चाहिये। क्योंकि दर्शक को देख कर ही नृत्यकार के मन में नाचने का उत्साह होता है। मैं कतिपय लोगों के कल्पित निराकार के समक्ष कैसे नाचूँगा? अब गोस्वामीजी ने कहा कि—

सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम् ॥

अर्थात् बन्धु! भगवान् तो कभी भी निराकार होते ही नहीं, क्योंकि निराकार का अर्थ है "निरुपमाः आकाराः यस्य सः निराकारः" याने जिसके आकार सर्वथा उपमा रहित हैं। प्रभु के उसी निरूपम सौन्दर्यसुधासागर में तुम्हारा जागतिक संकल्प-सेतु निमग्न हो जायेगा।

तब मन ने कहा कि इतने सुन्दर रूप को देख कर मैं नाचने में मग्न हो जाऊँगा किन्तु उस समय यदि कोई मुझे मारने आ जाय तो मैं क्या करूँगा?

गोस्वामीजी ने कहा कि नहीं जिसे तुम देख रहे हो वे निर्बल नहीं हैं।

आजानुभुज शरचाप धर संग्राम जित खर दूषणम् ॥

ये आजानुभुज हैं। मिथिला में एक सखी ने कहा कि ये दुल्हा बहुत सुन्दर है, पर थोड़ा श्याम है और इनके हाथ बहुत लम्बे हैं। तब दूसरी सखी ने जवाब दिया कि,

अँखियाँ में रहते रहते श्याम भे बरनवाँ हे।
जन के हित करते करते बढ़ें कर कमलनवाँ हे ॥

आँखों में रहने के कारण ये श्याम हो गये, भक्तों के काम करते-करते इनके हाथ लम्बे हो गये।

मन को सबसे ज्यादा भय काम से लगता है क्योंकि वह इतना नीच है कि अपने ही बाप को मारता है। "मारयति पितरं सः मारः" काम का पिता है मन। और वह इतना कृतघ्न है कि अपने पिता को ही मारता है। "मनः मथ्नाति इति मन्मथः" ऐसे काम से तुम डरना नहीं। क्योंकि श्रीरामचन्द्र अपने करकमलों में धनुष बाण धारण किये हुए हैं। "शर चाप धर"

मन ने पूछा कि महाराज! वे काम को कैसे मार सकेंगे! क्योंकि जिसके पास अंग होता है उसी के ऊपर अस्त्र शस्त्र चलाये जाते हैं। जब कि काम तो अनंग है।

गोस्वामीजी ने कहाः—तुम चिन्ता न करो यह तो रामजी के लिये बायें हाथ का खेल है। अतः यहाँ दृष्टान्त दिया "संग्रामजितखरंदूषणम्" यहाँ रावण को जीतने का उदाहरण नहीं दिया क्योंकि रावण के संग्राम में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र का प्रयोग कर बाणों के द्वारा उसको मारा था। पर खरदूषण के युद्ध में किसी भी प्रकार के अस्त्र शस्त्र या बाणों का प्रयोग नहीं हुआ क्योंकि खरदूषण को वरदान मिला था वे किसी भी अस्त्र से नहीं मरेंगे। अतः भगवान् ने उन्हें बड़े कौतुक से मारा।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी।
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्यो।
देखहि परस्पर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्यो॥

योद्धा पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं फिर उठ कर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकार की माया रचते हैं। देवता यह देख कर डरते हैं कि राक्षस चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ रामजी अकेले हैं देवता और मुनियों को भयभीत देख कर माया के स्वामी प्रभु ने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओं की सेना एक दूसरे का राम रूप देखने लगी और आपस में ही युद्ध करके लड़ मरी।

उसी प्रकार श्रीराम धनुष बाण लेकर यहाँ आयेंगे और काम उन्हें देखते ही देखते नष्ट हो जायेगा। अतः तुम रामजी को भजो।

मन ने कहा कि हम आपकी बात नहीं मानेंगे। तब गोस्वामीजी ने पूछा तो फिर किसकी मानोगे ईश्वर की। मन ने कहा कि नहीं ईश्वर भी कभी-कभी झूठ बोलते हैं हम तो उनके दास की बात मानेंगे।

तब गोस्वामीजी ने कहा, भगवान् की दासी हैं तुलसी और मैं तुलसी का दास हूँ अतः मैं "दासदासोऽहम्" तुलसीदास बोल रहा हूँ कि

इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनिमन रंजनम्।
मम हृदय कंज निवास कर कामादि खल दल गंजनम्॥

अतः हे मन तू भी दीन बन कर ऐसे कह कि श्रीशंकर शेष तथा मुनियों के मन को आनन्द देने वाले प्रभु ! मेरे हृदय में आकर कामादि दुष्टों को नष्ट करने के लिये निरन्तर निवास करें।

जटायुजी सोच रहे हैं, इस तरह मन को मारना नहीं चाहिये समझाना चाहिये तथा उसे जिलाने के लिये उसी के देवता राम रूप चन्द्रमा के द्वारा अमृत पान कराना चाहिये। अमृत है रामजी के मुख चन्द्र में। अतः जटायुजी उसी मुख चन्द्र को निरख रहे हैं। सारी पीड़ा दूर हो गई।

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिन्धु रघुवीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥

जटायु को राघव ने गोद में ले लिया। कैसे ?

दीन मलीन अधीन हो अंग, बिहंग पर्यो क्षिति छिन्न दुखारी।
राघव दीन दयालु कृपालु को, देखि दुखी करुणा भई भारी।
गीध को गोद में राखि कृपानिधि, नयन सरोरुह में भरे वारी।
बार ही बार सुधारत पंख, जटायू की धूरि जटान सों झारी॥

जगत की समस्यायें तब तक नही सुलझेंगी, जब तक संत के चरण की धूलि से उनका सम्पर्क नहीं होगा।

अतः राघव अपनी जटाओं को पावन करने के लिये उसी जटा से जटायु की धूरि को झाड़ रहे हैं। जिन जटाओं को गंगा के किनारे बाँधा था।

प्रातकाल बट छीर मगावा, जटा मुकुट निज सीस बनावा॥

जिस जटा का मुकुट बनाया था, उसी मुकुट पर जटायुजी की धूरि को मानो अंगराग के समान लगा लिया। भगवान् की जटा कर्कश नहीं है वह तो अनन्त-अनन्त कमल की कोमलता को भी लज्जित करने वाली रही होगी।

आज संस्कृत की यह व्युत्पत्ति सही हो गई। "जटायां आयुः यस्य सः जटायुः" जटा में जिसकी आयु है वह है जटायु।

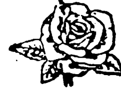
जटायुजी राघव की गोद में है। और राघव अपनी जटा से एक पक्षी को अपना पिता मान कर उनकी धूली झाड़ रहे हैं। समस्त

भूमण्डल पर वैदिक साहित्य से लेकर आज तक ऐसा महनीय व्यक्तित्व वाला मनुष्य कहीं नहीं दिखाई देगा।

जटायुजी श्रीराघवेन्द्र का दर्शन सुख पा रहे हैं।

अवलोकता राम मुखाम्बुज को, दृग से नव नेह निभा रहा था।
चुचकार दुलारता राघव को, हिय में नहीं नेकु अघा रहा था।
प्रभु गोद में राजता मोद भरा, अब गीध हृदय में जुड़ा रहा था।
लखि "गिरिधर" ईश की मूरति को, निज जीवन का फल पा रहा था।।

।। इति शम् ।।



॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

❀ षष्ठ–प्रसून ❀

कुन्तकंजकुलिशादिचिह्नितौ, श्रीभुषुण्डिमनसा विभावितौ ।
शंभुचित्तगृहलब्धसंस्थिति—कोशलेन्द्रचरणौ स्मरामि तौ ॥
देववृन्दपरिवंदितावुभौ, वैष्णवैरहरहः प्रशंसितौ ।
भावनाविवशभाववश्यगौ, कोशलेन्द्रचरणौ स्मरामि तौ ॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥

मैथिलसुतारक्षण महामखसृष्टपक्षिकलेवरम् ।
ध्यायन्तमथ रघुनाथचरणसरोजकलितेन्दीवरम् ।
तनुरक्तपंकविपक्षलुंचितपक्षकक्षगतायुषम् ।
रघुचन्द्रजूट जटायुषं प्रणमामि जयित्र जटायुषम् ॥

कह अंगद बिचारि मन माँही । धन्य जटायू सम कोउ नाही ॥
राम काज कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयेउ परम बडभागी ॥

भगवान्, भक्तवत्सल, अयोध्याधिपति, श्रीमद् राघवेन्द्र सरकार, श्रीमर्यादापुरुषोत्तम, राघवजू की भुवनपावनी कृपा से अनायासेन संलब्ध श्रीमद् रामकथा मंदाकिनी में सानंद निमज्जन कर, हम अपने अन्तःकरण चतुष्टय को शान्त करने का प्रयास करें !

"धन्य जटायू सम कोऊ नाहीं" यह बात संपाति के आगमन एवं उनसे मृत्यु की आशंका का विचार करके, श्रीअंगदजी समस्त वानर भटों से कह रहे हैं । बात बहुत स्पष्ट है, संसार से ऊबकर भले कोई मर जाय किन्तु इच्छा से कोई मरना नहीं चाहता । क्योंकि—

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

आत्मा की ही स्नेहसंयन्त्रणा में सारा संसार प्रिय लगता है । आत्मा के ही नाते संसार के सभी नाते बने हैं । यदि आत्मा नहीं है तो संसार के सभी नाते क्षणभर में टूट जाते हैं । अतः आत्मा के लिये ही सभी जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता इसलिये भगवान् पाणिनि ने भी सभी धातुओं में इच्छा के अर्थ में "सन्"

प्रत्यय का विधान किया है। जैसे प्रयोग में हम बोलेंगे "गन्तुम् इच्छति" जाने की इच्छा करता है तब पाणिनि कहेंगे कि "जिगमिषति।" ज्ञातुं इच्छति—जानने की इच्छा करता है इस प्रयोग में पाणिनि कहेंगे, जिज्ञासते किन्तु—मर्तुम् इच्छति इसके प्रयोग में "मुमूर्षते" पाणिनि नहीं कहेंगे क्योंकि मरने की किसी को इच्छा होती ही नहीं। एतावता मुमूर्षते प्रयोग कैसे बनाया जाय? तो इच्छा में वहाँ सन् नहीं बनाया जा सकता। वहाँ "कात्यायन—आशंकायाम् सन् वक्तव्यः" अर्थात् जब व्यक्ति को मरने की आशंका हो जाती है तब वहाँ "मुमूर्षते" कहते हैं। सः मुमूर्षते याने "मर्त्तुम् आशंकते" उसको मरने की अब आशंका हो रही है!

किन्तु आज यह नियम अन्यथा हो गया! आज जटायु को मरने की इच्छा हो रही है। क्योंकि उनकी दृष्टि में अब मरण की तुलना में चारों फल तुच्छ हो चुके हैं।

उसी व्यक्ति का मरण जीवन का अलंकरण बनता है, जिसके स्मरण में श्रीमैथिलिकंठाभरण आ जाते हैं। अर्थात् जिस व्यक्ति के स्मरण में श्रीअशरणशरण, परिकलितराजीवचरण, भक्तभय-संकटशोकहरण, कारणकरण, श्रीभूकंठाभरण, श्रीमद् मैथिली रमण पधारते हैं, उसी का मरण समस्त संसार का अलंकरण बन जाता है।

अतः मारीच ने कहा था—

मम पाछे धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउ, धन्य न मो सम आन।।

मेरे समान कोई धन्य नहीं है। क्योंकि आज मुझे प्रभु के द्वारा निर्वाण मिलेगा! किन्तु वैष्णव प्रभु के स्मरण को निर्वाण से भी कोटि गुना श्रेष्ठ मानता है। मारीच निर्वाण की उत्प्रेक्षा में अपने को धन्य मानता है किन्तु सबसे धन्य तो जटायु है कि जो आज निर्वाण दायक के गोद में विश्राम ले रहे हैं।

राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहु अरघ जल दीन्हों।।
सुनहु लषन! खगपतिहि मिले बन मैं पितु मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यौ।।

बहुविधि राम कह्यौ तनु राखन, परम धीर नहिं डोल्यौ।
रोकि प्रेम अवलोकि बदन बिधु बचन मनोहर बोल्यौ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं॥
(गीतावली अरण्यकाण्ड-१३)

आज राघव, गीधराज जटायु को अपने गोद में लेकर अपने नयनकमल के पवित्र आँसुओं के द्वारा मानो अर्घ्य जल दे रहे हैं। मानो राघव अपने नयनकमल के प्रेम रूपी जल से जटायु का अभिषेक कर रहे हैं। जब किसी को घाव लगता है तो गरम व नमकीन पानी से घाव को धोया जाता है, अतः भगवान् श्रीराम अपने गरम एवं नमकीन आँसुओं से जटायुजी के घाव को धो रहे हैं।

"मनहु अरघ जल दीन्हों" अर्घ्य दे रहे हैं। अर्घ्य में गायत्री मंत्र पढ़कर सूर्य नारायण को अर्घ्य दिया जाता है। आज गायत्री चकित हो गई? आज गायत्री का स्वयं महातात्पर्य महोभूतसविता परमात्मा सूर्य के भी सूर्य जटायुजी को अर्घ्य दे रहें हैं। यदि वे चाहते तो संकल्पमात्र से अनन्त-अनन्त गंगाजी प्रस्तुत कर सकते थे, किन्तु भगवान् ने सोचा कि गंगाजी मेरे चरणों का धोवन है, मेरे अंशभूत विष्णु के भी अंश श्रीवामन भगवान् का चरणोदक गंगाजी है। उससे मैं अपने पिताजी को कैसे अर्घ्य दूँ? इससे सोचा कि अर्घ्य के लिये कौनसा जल ले आऊँ? तब ध्यान आया कि जो नया नया हो, अपने कमल दल लोचन से विमोचित मंगलमय कोटि-कोटि सुधा नीर को भी निकृष्ट करने वाला वह नीर कि जिसे उन्होंने सम्हाल के रखा था, उसी जल से जटायुजी को अर्घ्य दिया! वनगमन में भी उन्होंने आँसु नहीं गिराये थे। तब कवियों को कहना पड़ा था—

न रोये राम बन गमन में पिता की वेदनाओं पर।
गीध को गोद में लेकर के अब आँसु बहाते हैं॥

उन्हीं आँसुओं को आज प्रभु ने उन्मुक्तता से बहाया! मानो प्रभु ने जटायु को आँसुओं का मुक्ताहार पहना कर, संसार से मुक्त होने का संकेत कर दिया! अब गोस्वामीजी को कहना पड़ा कि—

मुए मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुतिके बीच।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच ॥

यदि उनका शरीर छूटे फिर भी वे मुक्त हैं और जीते हुए भी मुक्त हैं! क्योंकि संसार को मुक्त करने वाले, सीताजी के गले के मुक्ताहार स्वरूप, साक्षात् नित्य, मुक्त, परमात्मा जिन्हें गोद में लिये हुए है क्या अब उनकी मुक्ति में कोई आशंका हो सकती है? वे तो जीते हुए भी मुक्त हैं और शरीर छोड़ेंगे तब भी मुक्त ही रहेंगे। इस प्रकार की मुक्ति आज तक किसी को नहीं मिली।

इस मुक्ति को देखकर मुक्ति का भी मन चुरा लिया गया, उसको भी आश्चर्य हुआ कि इतना आनंद तो मुझे भी कभी नहीं मिला!

ऐसा लग रहा है कि आज भगवान् स्वयं ही आँसु के रूप में पिघल कर जटायु के शरीर पर गिर रहे हैं। रामजी ने सोचा जटायुजी, पिताजी के मित्र रहे हैं, अतः इन्हें अवध से बड़ी ममता रही है। दंण्डक वन में पिताजी का शरीर छूटे यह योग्य नहीं क्योंकि अपने ही घर में मरने पर व्यक्ति को प्रसन्नता होती है। मेरा धाम अवध है तथा मेरे पिता होने के कारण जटायुजी का भी धाम श्री अवध ही है। अतः अवध में ही इनका शरीर छूटना उचित होगा। इसी विचार से भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने जटायुजी के समक्ष अवध उपस्थित कर दिया। यथा—

अवध तहाँ जहँ राम निवासु। तहँहि दिवस जहँ भानु प्रकासु ॥

इसी आशय से!

अवध वहीं है जहाँ रामजी विराजते है। अवध आ गया। आज श्रीराम बिपिनबिहारी न रह कर, अवधबिहारी हो गये! अवधबिहारी की गोद में जटायुजी पड़े हैं। बस अब वहाँ सरयू चाहिये। क्योंकि रामोपासक वैष्णवजन सरयू के तट पर शरीर छोड़ना बहुत अच्छा मानते हैं। वैष्णवों के शिरोरत्न श्री सद्गुरुदेव पुष्करबिहारी सरकार श्रीश्रीरणछोड़दासजी महाराज ने एक दोहा कहा है उनका वैष्णव पक्ष कितना निर्मल है। उन्होंने कहा कि—

जिये न सीताराम जपो, मुए न सरजू तीर।
"बनादास" ते मूढ़ मति, बिरथ ही धरे शरीर ॥

इसीलिये जीवन के अन्तिम क्षण में प्रत्येक वैष्णव को सरजू का पावन तट मिलना चाहिये। कि वा सरजू का जल मिलना चाहिये !

श्रीराघवेन्द्र ने सोचा कि सरयू मेरे ही नेत्रों में से प्रकट हुई है। उसे "हरिनेत्रजा" भी कहते हैं, अतः अब मैं अपने आँखों में से सरयू प्रकट करके उसी सरयू जल में जटायुजी को स्नान कराऊँ

सर्वेषामवताराणामवतारो रघूत्तमः।
सर्वासां सरितां मध्ये सरयूः पावनी यथा ॥

इसी आशय से आज श्रीराघव ने अपने आँसुओं के अविरल प्रवाह से मंगलमय अभिषेक करके जटायु को सरयू माँ की धारा में नहला दिया। क्योंकि जटायुजी को भगवान् की सामीप्य मुक्ति चाहिये थी और जब तक सरयू में स्नान नहीं करते तब तक भगवान् के समीप रहने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। यथा प्रभु श्रीमुख से ही अंगदादि के समक्ष इसका स्पष्टीकरण कर रहे हैं—

जनमभूमि मम पुरी सुहावनी। उत्तरदिसि बह सरजू पावनी ॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा ॥

जटायुजी को भगवान् अपना सामीप्य देना चाहते थे, इसीलिये सरयू में स्नान कराना उनके लिये आवश्यक था। सरयू अयोध्या से यहां आ नहीं सकती, अतः नई सरयू को भगवान ने अपनी आंखों में प्रकट किया अन्तर इतना ही हुआ कि अवध की सरयू के प्रागट्य में त्रिभुवन गुरु शिवजी कारणभूत हुए। शिवजी के ताण्डव नृत्य को देखकर भगवान की अत्यन्त प्रसन्नतावशात जो आंसू निकले वे ही सरयू के नाम से विख्यात हुए। इस समय शिवजी के शिष्य रावण के क्रूर कर्म से ही राघवेन्द्र के नेत्रों से नवीन सरयू का प्राकट्य हुआ, जो केवल जटायू को ही स्नान कराके कृतकृत्य हो सकी !

राघौ गीध गोद करि लीन्हो।
नयन सरोज सनेह सलिल सुचि मनहु अरघ जल दीन्हो ॥
सुनहु लषन ! खगपतिहि मिले बन, मैं पितु मरन न जान्यो।
सहि न सक्यौ सो कठिन विधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यो ॥

हे लक्ष्मण ! पिताजी की मृत्यु के पश्चात् जटायु जी का मिलन हुआ अतः पिताजी का अभाव नहीं खटका परन्तु विधाता उसे सहन न कर सके ! जटायुजी ने कहा कि हे राम ! ब्रह्माजी सोचते हैं कि

मैं ही सबका दादा बना रहूं। यदि मैं तुम्हारा पिता बनूंगा तो मैं ब्रह्माजी का दादा बन जाऊंगा और ब्रह्माजी किसी का पोता नहीं बनना चाहते, अतः असमय में ही तुम्हारे दोनों पिताओं को अपने पास बुला लिया।

भगवान् ने चाहा कि जटायुजी शरीर को रखें किन्तु जटायुजी ज्ञानी हैं! जानते हैं कि अब शरीर रखने से कोई लाभ नहीं होगा। मानो यह संकेत है कि जो नाता निभाया जाय उसके अनुसार ही वर्ताव करना चाहिये। यदि रामजी के पिता दशरथजी ने पुत्र के वियोग में शरीर छोड़ा था, तो मैं भी इनका पिता हूँ, अतः अब मैं पुत्रवधू के वियोग में शरीर छोड़ूंगा!

रोकि प्रेम अवलोकि बदन विधु बचन मनोहर बोल्यो।

जटायुजी श्रीराघव के मुखचन्द्र की ओर अवलोक के मनोहर वचन बोल रहे हैं।

यहां बड़ा मधुर संकेत है कि दशरथजी की मृत्यु होने ही वाली थी क्योंकि उन्हें वियोग का विष मिला। "लोग वियोग विषम विष दागे" विष को पाकर मरने में कोई नई बात नहीं हुई। यदि दशरथजी का शरीर नहीं छूटता तो अनुचित होता! अतः गोस्वामी ने उनके मरणकाल के समय कहा कि आज दशरथजी शोभित हो रहे हैं।

जाय सुमन्त दीख कस राजा। अमिय रहित जनु चन्दु बिराजा।।

भाव यह है कि यदि अमृत ही नहीं रहेगा तो चन्द्र रहेगा कैसे? अमृत ही सिद्ध रूप में चन्द्रमा बना है। यदि अमृतरूप श्रीराम ही चले गये, तो चन्द्रमा को यहां रहना उचित नहीं। अतः यहां "बिराजा" विशेषण दिया। इनका शरीर छूटना ही उचित होगा।

किन्तु गोस्वामीजी कह रहे हैं कि जटायु के सामने ऐसी परिस्थिति नहीं है! यहां तो,

रोकि प्रेम अवलोकि बदन विधु, बचन मनोहर बोल्यो।

यहां "विधु" शब्द के दो अर्थ मानने चाहिये एक तो "विधु" याने चन्द्रमा। और दूसरा अर्थ है "विधुः श्रीवत्सलांच्छनः" अर्थात्

विधु शब्द श्रीवत्सलांच्छन श्रीराम का वाचक है। श्रीराम के श्रीवत्स-लांछन को गोस्वामीजी ने मनु शतरूपा प्रसंग में कंठरवेण स्वीकारा है

उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला ।।

सौभाग्य से श्रीराम में ही विधु शब्द के दोनों अर्थ संघटित हो जाते हैं। श्रीराघवेन्द्र स्वयं श्रीवत्सलांच्छन के साथ चन्द्र हैं। और उनका मुख भी चन्द्र है।

चन्द्र में ही अमृत रहता है। और अमृत का गुण है कि मारने वाले को जिला देना! जिसकी वाणी में भी यह गुण है कि "मृतक जियावनि गिरा सुहाई" वे ही श्रीरामजी बोल रहे हैं, अर्थात् जहां साक्षात् अमृत का आगार सामने हो और अमृतमय परमात्मा ने जिन्हें गोद में लिया हो क्या यदि चाहे तो जटायुजी नहीं जी सकते थे? क्या उन्हें कोई मार सकता है?

क्योंकि वे किसकी गोद में हैं!

जाके डर अति काल डेराइ। जो सुर असुर चराचर खाई ।।

कि जिनके डर से काल भी डरता है, जो काल सुर, असुर एवं चराचर को खाने वाला है:

श्रीराम तो काल के भी काल हैं।

तात राम नहीं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।

काल के भी काल, कौशल्यालाल की गोद में बैठकर यदि जटायुजी कदाचित् अमरता चाहते तो क्या उन्हें न मिलती? अवश्य मिल सकती थी। किन्तु यही तो विशेषता है। व्रती उसी को कहते है कि जो अनन्त प्रकार की सामग्रियों की उपस्थिति में भी अपने व्रत का पालन करे।

इस प्रकार जटायुजी के जीवन में अभी मरने की कोई परिस्थिति नहीं है। सब प्रकार का सुख मिलने पर भी वे शरीर को त्यागना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें पश्चाताप है कि जो शरीर सीताजी की रक्षा न कर सका, उसे रखने से क्या लाभ? मैंने सीताजी को पुत्री कहा, रावण के नाश करने की प्रतिज्ञा की, किन्तु मेरे देखते-देखते मेरी पुत्रवधू का हरण हो गया। मेरा जीना बेकार है। अतः वे जीना नहीं चाहते।

सुमन्त्रजी इस यश की प्रतीक्षा करते रहे।

रहे हों न अन्तहु अधम सरीरु। जस न लह्यो बिछुरत रघुबीरु।

सुमन्त्रजी कहते हैं कि अमर होता, तो बात और थी। मरना तो है ही, पर रामजी के वियोग में न मर सका। महाराजा से यह हो सका कि रामजी के वियोग में उन्होंने अपना शरीर छोड़ा! किन्तु यहां तो संयोग है रामजी का। फिर भी शरीर छोड़ रहे हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि इतना अच्छा अवसर अब मुझे कभी प्राप्त नहीं होगा, अतः बड़ी प्रसन्नता से शरीर छोड़ने के लिये उद्यत हैं।

जटायुजी सोच रहे हैं कि, जिनका नाम मरन काल में मुनियों के लिये दुर्लभ है वहीं प्रभु मेरे नयन गोचर हो रहे हैं। इतना सुन्दर अवसर अब मुझे कब मिलेगा? अतः कहा कि—

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सनहु राम भंजन भव भीरा॥

अब धैर्य टूटा जा रहा था। इतना सुन्दर मंगलमय श्रीविग्रह कि जिसे देखकर सनकादिकों का भी धैर्य डिग गया। उस साक्षात् शृंगार सार सर्वस्व, करुणानिधान, प्रपन्नजनपारिजात, वारिजात-नयन, श्रीमन्मुकुन्द श्रीराघवेन्द्रजु का साक्षात् पितृत्व प्राप्त कर लिया हो, उनका धैर्य कैसे रह सकेगा?

राघवजु के सौन्दर्य सुधा सिन्धु की एक लहर मात्र से जटायुजी के धैर्य का बांध टूट गया! किन्तु फिर भी धैर्य रख रहे हैं, सोचा यदि मैं अधीर हो जाऊंगा, तो मेरे राघव भी अधीर हो जायेंगे। कभी-कभी घोर दुःख आने पर भी माता-पिता इसलिये नहीं रोते कि कहीं इनके रोने से उनके बालक भी रोने न लगें!

जटायुजी को बहुत बड़ा आघात लगा था, फिर भी उन्होंने यही सोचा कि मेरे अधीर होने से मेरे राघव को बहुत कष्ट होगा। आज उनके पास कोई नहीं है। कौशल्याजी भी दूर हैं, पिता स्वर्ग में हैं और न्यायतः मुझे भी अब जाना है। मेरे लाला अकेले पड़ेंगे इसलिये जटायुजी ने हृदय में धीर धारण किया "तब कह गीध हृदय धरि धीरा।"

वे अधीर इसलिये हो रहे थे कि अब मुझे राघव के मुखचन्द्र की छवि का दर्शन नहीं होगा! जिन राघव के मुखचन्द्र को देखकर अपने हृदय की व्यथा को तृणिकृत करके मैं संसार में धन्य-धन्य बना। जिनकी भुवनमोहनी झाँकी को झाँक-झाँक कर अपनी अपार दृष्टि का मैंने सदुपयोग किया, आज साकेतगमन के पश्चात फिर

वह मुखचन्द्र मुझे कैसे दिखेगा ? यद्यपि साकेत में साकेत बिहारी के दर्शन होंगे किन्तु शिशु राघव के अब मुझे फिर से दर्शन नहीं होंगे ! अतः अधीर हो गये !

वास्तव में वात्सल्यभाव ही इतना हृदयाकर्षी हुआ करता है। राघव के प्रति वात्सल्यभाव प्राप्त होना, उपासक की भागधेयता है।

जटायुजी अधीर होकर कहते हैं कि

राघव हौं केहि भांति रहुंगो ।
बिनु देखे तव कमल बदन सुत, बिरह दवागी दहुंगो ।।
मधुर मधुर मुसुकानि लालके, अब कब बहुरि लहुंगो ।।
कब सुनि तोतरि बचन सुधा सम, परमानंद बहुंगो ।।
बहुरि निरखि नव जलद रूप तव, कबहि हरष निबहुंगो ।।
"गिरिधर" ईश बिना तव पुर बसि दारूण विपत्ति सहुंगो ।।

अपने मुन्ने के वियोग की आशंका में जटायुजी का धैर्य टूट रहा है ! किन्तु सोचते हैं कि यदि मैं अपने वात्सल्य की ओर देखता हूँ तो मरने का मन नहीं करता। लगता है जीता रहूँ। पर फिर एक विचार आता है कि मेरे जीने से एक बड़ी विडम्बना आ जायेगी। अवधवासी और दूसरे लोग सभी यही कहेंगे कि राघव को कोई और पिता नहीं मिला कि गीध जैसे अधम पक्षी को पिता बनाया। अतः मेरे कारण उनके यश में कलंक लगेगा, उनकी बदनामी होगी मैं उनके पिता बनने योग्य नहीं हूँ, इसलिये मेरा जाना ही उचित होगा। यह सोच कर धैर्य धारण करके वे बोले !

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भवभीरा ।।

हे भवभीर के भंजन, हे संसार की विपत्तियों को दूर करने वाले, राम, सुनिये ।

नाथ दसानन यह गति कीन्हीं। तेहि खलजनकसुता हर लीन्हीं।

यहाँ जान-बूझ कर वात्सल्य भाव को छिपा रहे हैं और दासभाव को प्रकट कर "नाथ" सम्बोधन का प्रयोग कर रहे हैं !

हे नाथ ! दशानन रावण ने मेरी यह गति की है ! वैष्णवों का बड़ा मधुर स्वभाव होता है, उनका चाहे कोई कितना भी अपकार करे फिर भी वे उसकी निन्दा नहीं करते ! यद्यपि रावण ने

जटायुजी के प्रति बहुत बड़ी कृतघ्नता वर्ती थी फिर भी वे आदर से बोल रहे हैं कि "नाथ दसानन यह गति कीन्हीं ! यहां "नाथ" और "दशानन" शब्द बड़े मार्मिक हैं। "दशानन" शब्द का तात्पर्य यह है कि हे प्रभु ! दशानन ने मेरे ऊपर बहुत उपकार किया है।

प्रभु ने पूछा:—कैसे ?

जटायुजी ने कहा कि आपके चतुरानन ब्रह्माजी से यह दशानन रावण अच्छा है ! क्योंकि चतुरानन जानते थे कि जटायुजी को भगवान् राम के प्रति वात्सल्य भाव है, वे उनके पिता बनेंगे फिर भी उन्होंने मेरे कर्म के फलभोग में जरासी भी छूट नहीं दी ! मेरे दुष्कर्म के फलस्वरूप मुझे गीधयोनी ही दी। किन्तु धन्य है दशानन, कि जिसने मेरे पंख काटकर आपके पक्षपात के लायक तो मुझे बना दिया ! अतः आपके चतुरानन से भी दशानन के मेरे ऊपर उपकार हैं !

प्रभु ने कहा कि पिताजी ! यदि दशानन के प्रति आपकी इतनी सहानुभूति है तो मैं दशानन को ऐसी गति दूंगा कि उसे देखकर चतुरानन के मुख में भी पानी आ जायेगा !

और वही किया। रावण के मरण के पश्चात् प्रभु ने सोचा कि अब इसे कहां रखा जाय, सबको तो मैंने अपने चरणों में वास दिया है—

इसे अपने मुख में वास दूंगा !

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥

रावण का रंग भँवरे जैसा काला है ! प्रभु ने सोचा कि भँवरे को बंध करने के लिये कमल चाहिये, अतः भगवान् ने अपने मुखकमल में उसके तेज को समाहित कर लिया।

दूसरा भाव यह है कि यहां "नाथ दसानन दुर्गति कीन्हीं" ऐसा नहीं कह रहे हैं, कहते हैं कि "नाथ दसानन यह गति कीन्हीं" याने दशानन ने मेरी सद्गति की है। यदि वह मेरा पंख न काटता, तो मेरे मन में इस प्रकार का दैन्य भाव नहीं आता और हे राघव ! मैं आपकी गोद में बैठने का सौभाग्य नहीं पाता !

तुलसी संत सुअंबतरु फूलि परहि पर हेत ।
उत ते वे पाहन हने इतते वें फलदेत ।।

संतों का स्वभाव आम के समान होता है ।

आम्रफल इतना स्वादिष्ट इसलिये है कि राम का नाम ही उलट कर आम्र बन गया । राम का आकार पहले, मकार मध्य में और रकार अन्त में आ गया ! संसार में कोई ऐसा फल नहीं कि जिसको एक बार मुख से निकालकर पुनः मुख में डाला जाय ! केवल आम्रफल ही ऐसा है और यह केवल राम नाम के प्रभाव का महत्व है ! आम से लदे हुए वृक्ष को पत्थर मारने पर, वह पत्थर मारने वाले को फल ही देता है ।

ठीक उसी प्रकार यद्यपि कृपाकृपण रावण ने अपनी कृपाण से जटायुजी के पंख काट डाले । फिर भी जटायुजी रावण के प्रति प्रभु को सहानुभूति करने के लिये ही प्रेरित कर रहे हैं । यही जटायुजी की संतता है ।

निज परिताप द्रवहि नवनीता । परदुःख द्रवहि संत सुपुनीता ।

संत दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं, अतः जब जनकसुता का नाम आया तब जटायुजी ने रावण को खल कहा ! "तेहि खल जनकसुता हरिलीन्हीं" ।

रावण खल है । खल वही होता है जो दूसरों के सुख में खलल डाल दे !

प्रश्न हुआ कहाँ ले गया ?

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाईं ।।

यहां यह स्पष्ट है कि यद्यपि सीताजी भक्ति स्वरूपा हैं परन्तु भक्ति की भी तभी शोभा होती है जब वह भगवान् से युक्त हो । यदि रावण सीताजी को ले ही जाना चाहता था, तब रामजी के साथ ले जाता, तो इस प्रकार का अनर्थ न होता । रावण ने भगवान् से भक्ति को पृथक् माना इसीलिये उसका सर्वनाश हुआ ।

दक्षिण दिशा काल की दिशा है और सीताजी रावण के लिये साक्षात् कालरात्री के समान बनेंगी ।

काल रात्रि निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ।।

इसलिये **"लै दच्छिनदिसि गयऊँ गोसाईं"**

यहाँ संकेत है कि सीताजी प्रभा है और आप सूर्य हैं, अब प्रभा

दक्षिण दिशा को गई है, तो सूर्य को भी वहीं जाना होगा। ग्रौर नियम भी यही है कि प्रभा सूर्य के बिना रह ही नहीं सकती। सूर्य का उत्कर्ष भी पूर्ण मध्याह्न में याने दक्षिणाभिमुख होने पर होता है।

ग्रतः ग्राप भी दक्षिण दिशा में पधारो क्योंकि आपको यश लेना है। शास्त्रों में कहा है कि "यशस्यो दक्षिणा मुखः" यश को चाहने वाले व्यक्ति के लिये दक्षिण दिशा ही ग्रपेक्षित है।

अथवा दक्षिण दिशा यमराज की दिशा है ग्रौर यमराज स्वयं आपकी विभूति है।

"यमः संयमतामहम्" (गीता १०-२६)

संयम करने वालों में यम मैं ही हूँ। एतावता ग्राप साक्षात् रघुराज यमराज के समान तेजस्वी होकर रावण का संयमन कीजिये।

लै दच्छिन दिसि गयऊँ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं ।।

मानो ग्रब ग्रहण लग गया है! उस ग्रहण में ऐसा लग रहा है कि सूर्य की प्रभा को रावण रूप राहु ने परामृष्ट करने की कुचेष्टा की है! वास्तविकता भी यही है कि राहु सूर्य या चन्द्र को नहीं ग्रसता किन्तु उनकी प्रभा को रोक देता है। सामान्य सूर्य चन्द्र तो राहु को छोड़ देते हैं पर यहाँ तो राघवेन्द्र ही सूर्य ग्रौर चन्द्र दोनों हैं! जब रावण रूप राहु ने उनकी प्रभा रूप सीताजी को स्पर्श करना चाहा तब तो उसका सर्वनाश निश्चित ही है!

यहाँ एक संकेत हुग्रा कि मानो प्रभु जटायुजी से कह रहे हैं, कि पिताजी! ग्राप मेरे साथ चलिये, ग्राप रावण को जानते हैं, तो ग्राप मुझे दिखा दीजियेगा! इस पर जटायुजी कहते हैं कि नहीं।

दरस लागि प्रभु राखेहु प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना ।।

मैंने तो आपके दर्शन के लिये ही ग्रपने प्राणों को टिकाये रखा था, बस ग्रब मैं चलना चाहता हूँ!

रावण ने कराल कृपाण से मेरे पंख काटे तभी मैंने यमराज से कहा कि अभी रुक जाओ यदि अभी मैं शरीर छोड़ूँगा तो लोग समझेंगे कि रावण ने मुझे मारा है। मैं यह कलंक नहीं लेना चाहता। ग्रब मैं शरीर छोड़ना चाहता हूँ। इसी वेदना से कि मैं सीताजी को नहीं छुड़ा सका! यदि सीताजी का हरण हुग्रा तो जटायु का

मरण होना ही है। केवल मैं आपके दर्शन के लिये शरीर को टिकाये हुए था, बस दर्शन हो गये अब मैं चलना चाहता हूँ।

जटायुजी बहुत करुण बोल रहे हैं ! कि मेरे प्राण अब चलना चाहते हैं। जाना नहीं कहा ! जाने का अर्थ होता है आपको छोड़ कर जाना ! परन्तु यहाँ चलना कहा याने आपके लोक में चलना चाहते हैं अब हम आपके लोक में चल करके आपके दास्यभाव की ही सेवा करेंगे ! अतः प्रभु अब चलने दो !

भगवान् श्रीराम की आँखों में आँसू आ गये। लक्ष्मणजी हिचकिचियाँ भरने लगे।

प्रभु ने कहा कि पिताजी ! कहाँ जा रहे हो ? मेरी तो इच्छा थी कि महाराजा दशरथजी राज्याभिषेक देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे, पर वे देख न सके। आप उनके मित्र हैं, तो कम से कम आप ही मेरे राज्यसुख को देख लेते।

जटायुजी ने कहा, राघव ! अभी तक तुम्हारा लड़कपन नहीं गया। क्या संसार में कभी तुमने राजपिता का नाम सुना है ? राजमाता हुआ करती है किन्तु पिता के स्वर्गवास होने पर, अथवा अरण्य में चले जाने के बाद ही राजपुत्र का राजसिंहासन पर अभिषेक होता है ! अतः मैंने सोचा कि मैं अरण्य में क्यों जाऊँ ? आपके साकेत में ही जाकर वहीं से आपका राज्यसुख देखूंगा !

फिर भी राघवेन्द्र को संतोष नहीं हुआ। वे फूट-फूट कर रोने लगे। तब जटायुजी ने कहा, ।

नीके कै जानत राम हियो हौं।
प्रणतपाल सेवक कृपालचित पितु पटतरहि दियो हौं।
त्रिजग जोनि गत गीध जनम भरि खाइ कुजन्तु जियो हौं।
महाराज सुकृति समाज सब ऊपर आजु कियो हौं।
स्रवन बचन मुख नाम रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं।।

(गीतावली अरण्यकाण्ड-१४)

हे राघव। मैं अपने हृदय में ठीक-ठीक जान चुका हूँ कि मैं अधम, आमीष भक्षी, गीध योनी—आपके पिता होने लायक नहीं हूँ फिर भी आपने मुझे समस्त सुकृतवानों का शिरमौर बना दिया हैं।

महाराज दशरथजी के समान इस त्रिभुवन में भूरी भाग्यवान् कोई नहीं है ।

त्रिभुवन तीन काल जग माँही । भूरि भाग दसरथ समनाही ।।

किन्तु आपने दशरथजी से भी अधिक बड़भागी मुझे बनाया ! मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है कि जिस सौभाग्य के लिये नल कूबर एवं मणिग्रीव ने भगवान् श्रीकृष्ण से यमलार्जुन के प्रसंग में वरदान मांगा था,

वाणिर्गुणानुकथने श्रवणौ कथायां ।
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यं शिरस्तव निवास जगत् प्रमाणे ।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत् तनूनाम् ।।
(भागवत १०-१०-३७)

हे दामोदर ! हमारी वाणी आपके ही गुणों का अनुकथन करती रहे । हमारे श्रवण आपकी कथा को सुनते रहें । हमारे हाथ आपकी सेवा के भिन्न भिन्न कर्म करते रहें । हमारा मन आपके चरणारविन्द का स्मरण करता रहें । हमारा शीश आपके निवासभूत समस्त संसार को प्रणाम करें । हमारी दृष्टि आपके शरीरभूत संतों का दर्शन करें ।

कितनी बड़ी तपस्याओं के पश्चात् नल कूबर व मणिग्रीव को जो वरदान प्राप्त हुआ वह जटायुजी को स्वभावतः सिद्ध है । अतः वे कहते हैं !

श्रवण बचन मुख नाम रूप चख राम उछंग लियो हौं ।।

श्रवण से राघवेन्द्रजी का वचन सुन रहे हैं, मुख से राम राम का जप कर रहे हैं, नेत्र से भगवान् की मनोहर रूप माधुरी का पान कर रहे हैं और शरीर रामजी के उछंग में पड़ा है । अतः कह रहे हैं कि आज बताओ राघव ! मेरे समान बड़भागी संसार में कौन होगा ? राघव अब मुझे चलने दो । राघव करुण हो गये और कहा कि

राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाई कही तेहि बाता ।।

यहाँ जटायुजी के वात्सल्य भाव के कारण भगवान् में इतना शिशुत्व आ गया, इतना बचपना आ गया कि वे तोतली भाषा में बोलने लगे ! पिता के छोटे भाई को चाचा कहा जाता है । चाचा

को यदि छोटे बच्चो से कहलावे तो वे ताता कहेंगे अपनी तोतली भाषा में !

तातः, तातौ, ताताः ।। ताता यहाँ न्यायतः बहुवचन है क्योंकि बड़ों के लिये बहुवचन का ही प्रयोग करते हैं। अतः रामजी भी तोतली भाषा में बोलते हैं कि "ताताः छलीलं लक्छन्तु"

पिताजी शरीर को रख लीजिये !

राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाई कही तेहि बाता ।।

इतना कहने पर जटायुजी के मुख पर मुस्कुराहट आ गई ।

जटायुजी ने मुस्कुराकर कहा—राघव ! अब तुम कितने बड़े हो गये हो फिर भी तुम्हारा बचपना नहीं गया। तोतली भाषा में बोल रहे हो। यदि कोई चालीस साल का बड़ा व्यक्ति तोतली भाषा में बोले, तो हँसी आयेगी या नहीं ? अतः जटायुजी हँस पड़े ।

"मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता"

किन्तु राघव को संतोष नहीं हुआ, वे बड़े करुण स्वर में बोल रहे हैं !

मेरे जान तात कछू दिन जीजै ।
देखिय आपु सुवन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै ।।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै ।।
हरिहर सुजस सुनाइ दरस दै, लोग कृतारथ कीजै ।।
देखि बदन सुनि बचन अमिय तन रामनयन जल भीजै ।
बोल्यो बिहग बिहँसि रघुवर बलि कहौं सुभाय पतीजै ।।
मेरे मरिबे सम न चारिफल होहिं तौ क्यों न कहीजै ।
तुलसी प्रभु दियो उतरू मौन ही परी मानो प्रेम सहीजै ।।

(गीतावली अरण्यकाण्ड-१५)

पिताजी ! मेरी ऐसी इच्छा है कि कुछ दिन और शरीर रखिये। आपको पुत्र सुख देखने को नहीं मिला मैं आपको पुत्र सुख दूंगा और आप मुझे पिता का सुख दीजिये ! दिव्य देह धारण करके इच्छा-

पूर्वक इस जगत में जी लीजिये तथा भगवान् विष्णु एवं शंकरजी का सुयश सुनाकर पूरे अयोध्यावासियों को कृतार्थ कीजिये।

जटायुजी ने रामजी के अमृतमय बचन सुनकर बिहँस कर कहा, राम ! आज मेरा मरना इतना सौभाग्यशील है कि इसकी तुलना में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष भी कुछ नहीं है। यदि हो तो आप कहिये ? प्रभु श्रीराम मौन रह गये ! वास्तव में क्या उत्तर देते जटायुजी जैसा भाग्य किसका है। अतः अंगदजी ने कहा—

धन्य जटायू सम कोउ नाही ।।

।। इति शम् ।।



।। श्रीरामः शरणं मम ।।

सप्तम प्रसून

श्री रामः शरणं समस्त जगतां रामं विना का गतिः,
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे,
रामे वृत्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ।।

नवतमाल पयोधर सौभगम्।
क्षपित राक्षसवंश महाभटम्।
समधिगम्य सुभक्त जटायु शम्।
रघुपतिं प्रणतोऽस्मि मुहुर्मुहुः ।।

नयन-नीरज-नीरतीरतलम्।
समधि सिच्य कृपामय चेतनम्।
खगपतिं मृणयन्तमनामयम्।
रघुपतिं प्रणतोऽस्मि परानुगम् ।।

मारुतिं मारुताकारं वेगलंघित सागरम्।
मन्महे मारुतिं भीरं मारुतो मारुतात्मजम् ।।

अंकाश्रयो लोकपितुः पितेव,
संतर्पित श्राद्धक्रियाश्रुभिश्च।
जिगाय साकेत निकेतमाधम्,
स उत्तमश्लोक जयी जटायुः ।।

कह अंगद बिचारि मन माही। धन्य जटायू सम कोउ नाही।
रामकाज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परमबड़भागी ।।

अब हम श्रीमद् अकारण करुणावरुणालय, नीलसरोरूहश्याम, इन्द्रनीलमणिश्याम, कोटि मन्मथाभिराम, निखिललोचनाभिराम, सकलभुवनाभिराम, पूरित प्रणतकाम देहविदितकोटिकाम श्रीमन् मैथिलीरमण श्री मर्यादा पुरुषोत्तम भुवन भूषण भगवान् श्री राघवेन्द्र

सरकार की श्री रामकथा मंदाकिनी में स्नान कर अपने अन्तःकरण को विशुद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं !

वस्तुतः यह कथा हम सभी को उसी प्रकार प्राप्त हो गई है जैसे

जिमि सिंघल बासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयाग ।।

आज हम भी धन्य हो गये हैं !

भगवान् सभी भक्तों की रुचि का पालन करते हैं । श्रावण शुक्ल सप्तमी को गोस्वामीजी का जन्म हुआ और श्रावण शुक्ल सप्तमी को ही उन्होंने शरीर छोड़ा । भक्त महिला ललाम मीराबाई का शरीर भगवान् श्री द्वारकाधीशजी के श्रीविग्रह में विलीन हो गया । इन दोनों की जीवनलीला समाप्तिकरण में बड़ा अन्तर है । सामान्य रूप से लोग ऐसा कह सकते हैं कि मीराजी की स्थिति गोस्वामीजी से बहुत ऊँची है क्योंकि उनको शरीर छोड़ना न पड़ा, उनका शरीर श्री द्वारकाधीश जी के श्रीविग्रह में विलीन हो गया और गोस्वामीजी को शरीर छोड़ना पड़ा । परन्तु विचार करें तो दोनों ही बड़े विलक्षण कोटि के भक्त हैं । मीराबाई को स्वयं ही गोस्वामीजी के प्रति बड़ा आदर था ! मीराजी के जीवन में चार भावों का सम्मिश्रण होते हुए भी कान्ताभाव प्रधान था । कान्ता निरन्तर अपने पति से जुड़ी हुई रहना चाहती है । अतः कान्ताभाव के अनुसार भगवान् ने उनकी रुचि की रक्षा की और उनको अपने श्रीअंग से जोड़ लिया ! तथा तुलसीदासजी महाराज दास्यभाव के उपासक हैं, उनका मन यह है कि बस हम प्रभु के दरबार में पड़े रहें ।

श्री रघुवीर निबारेउ पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो ।।

(हनुमानबाहुक-३६)

गोस्वामीजी भगवान् का सामीप्य चाहते हैं ! कान्ताभाव में कभी कभी मान भी आ जाता है किन्तु दासभाव में कभी भी मान नहीं आता । अतः दोनों की उपासना के अनुसार प्रभु ने दोनों की रुचि रखी गोस्वामीजी दिव्य शरीर पाकर साकेत बिहारीजी के परमप्रिय पार्षद बने !

कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बालमीकि तुलसी भयो ।

प्रकृत चर्चा भी ठीक इसी महामहनीय सिद्धान्त से जुड़ी हुई हैं। भगवान् राघवेन्द्र जटायुजी से कह रहे हैं कि आप शरीर को रख लें और जटायुजी शरीर को रखना नहीं चाहते। अब जटायुजी ने तीसरा विकल्प ढूंढ निकाला कि राघव आपने यह तो नहीं कहा कि इसी शरीर को रखकर इसी पृथ्वी पर रहो इसलिये अब आपके द्वारा प्राप्त वह दिव्य शरीर को रखकर मैं साकेत में रहूंगा। क्योंकि—

जाकर नाम मरत मुख आवा, अधमहु मुकुत होइ श्रुति गावा।
सो मम लोचन गोचर आँगें, राखहु नाथ देह केहि खाँगे॥

जिस प्रभु का नाम मरते समय यदि मुख पर आ जाय तो अधम भी मुक्त हो जाता है। इसे हम नहीं कह रहे हैं, किसी पंथ का प्रचारक नहीं कह रहा है, "श्रुतिगावा" याने वेद ने कहा है। वही साक्षात् नामी मेरे समक्ष है, तो किस लाभ के लिये मैं अपना शरीर रखूं। (खाँगे याने लाभ)

यहाँ आगें और खागें दोनों शब्दों में बिंदी लगाई गई! ध्वनि-वाद से यह सूचित होता है कि मानो गोस्वामीजी जटायुजी के शब्द का अनुकरण बता रहे हैं! बोलते बोलते अब जटायुजी का श्वास क्षीण होता जा रहा है, वे इसलिये अति निर्बल हो जाते हैं, नाक में से बोल रहे हैं।

यहाँ जटायुजी ने भगवन् नाम महिमा के उत्कर्ष का वर्णन किया है। श्री रामजी के पिता तुल्य जटायुजी कह रहे हैं कि कितना भी नीच प्राणी यदि भगवान् का नाम लेता है, तो वह मुक्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार भगवान् कपिलदेव की माता देवहुती कहती है कि—

अहो बत श्वपचोऽतो गरोयान्, यत् जिह्वाग्र वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुहुः शश्णुरार्या, ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(श्रीमद्भागवत ३।३५।७)

भगवती देवहुति भगवान् कपिल की स्तुति करती हुई कहती है कि; हे भक्त वत्सल प्रभो। अहो!! वह स्वपच अर्थात् चाण्डाल समस्त लोक से श्रेष्ठ है, जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर सतत आपका नामामृत बिराजता रहता है। जो महानुभाव श्रद्धा से आपका नामामृत पान करते रहते हैं, उन्होंने समस्त तपस्यायें कर लीं तथा

विधिवत् अग्निहोत्र का संपादन कर लिया एवं समस्त तीर्थों में परम दिव्य स्नान कर लिया, तथा उन्हीं महा पुण्यशालियों ने समस्त वेदों का वाचन कर लिया।

श्रीगोस्वामीजी ने भी इसी आशय का वाक्य श्रीविनयपत्रिका में उद्धृत किया है।

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालम्।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशं, मनवद्यमवलोक्यकालम्।।

(विनयपत्रिका-४६)

जो ब्राह्मण होकर भगवान् का नाम नहीं लेता, उनसे तो कोटि गुना अच्छा वह चाण्डाल है जो निरन्तर भगवान् का नाम लिया करता है।

तुलसी भजत स्वपच भलो, रटे रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम।।

जिसके मुख ने निरन्तर राम नाम निकलता रहता है, वह वर्णाधम भी भगवन् नामहीन उत्तम वर्ण वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ है।

इस कलिकाल में रामनाम के सिवा कोई आधार नहीं है।

नहीं कलि करम न भगति विवेकु। राम नाम अवलम्बन एकु।

राम नाम एक ऐसी गंगा है जिसमें बृहस्पति से लेकर चाण्डाल तक स्नान करके कृतकृत्य हो सकते हैं।

रामेति वर्णद्वयमादरेण, जपन् नरो याति सदैव मुक्तिम्।
कलौ युगे कल्मषमानसानां, अन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः।।

कलियुग में दूसरे धर्म में अधिकार नहीं है। "स्त्री शूद्रौ नाधीयेताम्" स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। यदि कोई पूछे कि ऐसा क्यों? शूद्र और स्त्रियों के लिये वेदाध्ययन का अधिकार क्यों नहीं दिया?

इसका समाधान यह है कि कुछ ऐसी बातें हैं जो स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं और कुछ ऐसी क्रियायें हैं जो पुरुष नहीं कर सकते।

वेदोच्चारण प्लुत स्वर से किया जाता है, जो स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। गर्भधारण आदि का सामर्थ्य पुरुष में नहीं होता। स्त्रियों

को जनेउ पहनने का अधिकार भी नहीं है। जनेउ उसे पहनाई जाती है, जो ऋणि होता है। पुरुष के ऊपर तीन ऋण होते हैं। देव ऋण, पितृ ऋण तथा ऋषि ऋण। हमारे यहाँ स्त्री को देवी माना जाता है कर्जदार नहीं। पुरुष स्त्री का ऋणि है किन्तु स्त्री पुरुष की ऋणि नहीं मानी गई। अतः ऋण स्वीकार के लिये किये जाने वाले कर्म यज्ञोपवीत धारण, संध्यादि कर्म स्त्री को करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती ! क्योंकि पति के द्वारा किये हुए शुभ कर्मों का आधा पुण्य तो उसे प्राप्त हो ही जाता है।

कलौयुगे कल्मषमानसानां, अन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः

कलियुग में अन्य धर्म में किसी का अधिकार नहीं है। अतः गोस्वामीजी ने कहा।

कलि पाखण्ड प्रचार धर्म न ज्ञान न जोग जप।
तुलसी उभय अधार रामनाम सुरसरि सलिल ।।

इस कलियुग में अनेक प्रकार के पाखण्ड चलते हैं। यहाँ न तो धर्म का, न तो ज्ञान का अथवा न ही योग या जप का आधार किया जा सकता है। केवल रामनाम और पवित्र गंगास्नान ही आधार रहे हैं !

जटायुजी भी नाम का प्रतिष्ठापन करते हुए कहते हैं कि प्रभु ! केवल आपके नाम से अधम भी मुक्त हो जाते हैं, वे नामी प्रत्यक्ष मेरे सामने हैं, अब मैं और कौन से लाभ के लिये शरीर को रखूं ! अब मुझे इस शरीर को छोड़ लेने दो, क्योंकि इसी शरीर से मैंने किशोरीजी की रक्षा का व्रत लिया था, वह पूरा नहीं हो सका। जब पृथ्वीसुता यहाँ नहीं है, तो अब मैं भी इस पृथ्वी पर रहना नहीं चाहता।

इतना सुनकर प्रभु के नेत्र सजल हो गये ! उन्होंने कहा—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ।।

पिताजी ! आपने अपने कर्म से इस दिव्य गति को प्राप्त किया है। क्योंकि,

परहित बस जिनके मन माही। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं

पर याने पराया। रामजी कह रहे हैं कि शास्त्र की दृष्टि से पुत्री पराया धन होती है "अर्थो ही कन्या परकीय एव" उसके प्रति भी आपकी इतनी बड़ी भावना है "सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा" अतः आप महान् हो !

जटायुजी ने कहा, पुत्री पराया धन होती है किन्तु ये तो पुत्रवधु है और पुत्रवधु पराई नहीं होती, अतः राघव मैंने जो कुछ भी किया वह अपनों के लिये किया है।

तो फिर यहाँ "परंहित" का प्रयोग किस अभिप्राय से किया गया ?

रामजी ने कहा कि सीताजी तो पुत्रवधु हैं किन्तु रावण तो पराया है, पर का अर्थ संस्कृत में शत्रु होता है। रावण शत्रु है उसने आपके पंख काट दिये फिर भी आपको रावण के प्रति इतनी हितैषि भावना है कि "नाथ दसानन यह गति कीन्ही" रावण की प्रशंसा कर रहे हैं। रावण जैसे शत्रु पर भी आपकी ऐसी भावना है तो निश्चित आप जैसे महापुरुष के लिये संसार में कुछ दुर्लभ नहीं है।

कभी कभी भगवान् भी भक्त की परीक्षा करते हैं। वे जटायु की परीक्षा कर रहे हैं कि उन्हें अपने शरीर से मोह है या नहीं ?

दो पक्षियों के सिर पर भगवान् ने अपने कर सरोज का स्पर्श किया।

एक तो जटायुजी के सिर पर, यथा

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुवीर।

और दूसरे कागभुषुण्डिजी महाराज के सिर पर, यथा।

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेउ।
दीन दयाल सकल दुःख हरेऊ।।

किन्तु दोनों पक्षियों की भूमिका में बड़ा अन्तर है। एक अपने शरीर को रखना चाहते हैं और दूसरे अपने शरीर को छोड़ना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि भुषुण्डि महाराज के लिये शरीर साधन है क्योंकि वे कहते हैं "ऐहि तन राम भगति मैं पाई" इसी शरीर से मुझे रामभक्ति प्राप्त हुई अतः उन्हें उस शरीर से प्रीति है और जटायुजी को अपने शरीर से चिढ़ है कि इस शरीर के रहते हुए मैं

किशोरीजी की रक्षा न कर पाया। मैंने रामभक्ति को जिस शरीर से गँवा दिया उसे रखने से क्या लाभ ?

एक अपने शरीर को भक्ति का साधक मानते हैं तो दूसरे अपने शरीर को भक्ति का बाधक मानते हैं। इस तरह दोनों मान्यतायें अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार उचित हैं। जटायुजी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, उन्हें अपने शरीर से बिलकुल मोह नहीं है। अतएव भगवान् राम ने कहा ठीक है यदि आपकी यही इच्छा है। तो

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा ।।

पिताजी ! आप यह शरीर छोड़कर मेरे धाम को जाइये कि जहाँ जाने के बाद कोई वापस नहीं लौटता।

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

आप स्वयं पूर्णकाम हो आपको मैं क्या दे सकता हूँ ? किन्तु हाँ रास्ते में जब आप पिता दशरथजी से मिलेंगे तब सीताहरण के विषय में कुछ कहियेगा नहीं। जो मैं राम हूँ तो स्वयं रावण अपने कुल सहित आकर स्वयं ही कहेगा।

सीता हरन तात जनि कहहि पिता सन जाई।
जौं मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आई ।।

श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीरामचरितमानस में तीन बार "राम" नाम का उच्चारण किया है।

पहले परशुरामजी के समक्ष—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा।

दूसरे जटायुजी के समक्ष—

जौं मैं राम तो कुल सहित कहिहि दसानन आई।

तीसरा अपना परिचय देते हुए हनुमानजी के समक्ष—

नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारी सुहाई ।।

यहाँ प्रतिज्ञा करते हुए अपने नाम का उच्चारण कर रहे हैं। हनुमन्नाटक में वर्णन है कि

तात त्वं निज तेजसैवगमितः स्वर्गं व्रजास्स्वस्ति ते
ब्रूमस्त्वेक मिमां वधूह्रितिकथां तातान्तिके मा कृथाः

रामोऽहं यदि तत् दिनैः कतिपयैर्व्रीड़ा नमत् कंधरः
सार्धं बन्धु जनेन सेन्द्र विजयी वक्ता स्वयं रावणः ।।

भगवान् कह रहे हैं कि चाचाजी आप मेरे धाम को जा रहे हैं, तो रास्ते में आप पिताजी को तो अवश्य मिलेंगे ही। जब पिताजी मेरा समाचार पूछेंगे तो आप उन्हें कृपया सीताजी के हरण का प्रसंग नहीं कहियेगा। नहीं तो वे सोचेंगे कि मेरे कुल के लोग इतने अकर्मण्य हो गये कि नारी की रक्षा भी न कर सके। अतः यदि मैं "राम" हूँ तो थोड़े ही दिनों में लज्जा से अपने कंधरा झुकाकर बन्धुजनों के सहित रावण पिताजी के समक्ष स्वयं ही कहेगा कि आपकी पुत्रवधु का हरण करने का परिणाम यह हुआ कि रामजी के बाणों से निर्वाण पाकर मैं यहाँ आया हूँ।

अर्थात् रावण वध की प्रतिज्ञा यहीं पर रामजी ने कर ली है।

कहिहि दसानन आइ ।।

यहाँ "दसानन" शब्द का प्रयोग इसलिये कर रहे हैं क्योंकि जटायुजी ने कहा था कि

"नाथ दसानन यह गति कीन्ही"

उसी दसानन का यहाँ भगवान् पुनरावर्तन कर रहे हैं।

यहाँ भगवान् दो पक्ष की चर्चा करना चाहते हैं। पहली चर्चा तो पिताजी से नहीं कहियेगा वे दुःखी हो जायेंगे।

दूसरी चर्चा यह है कि आप आश्वस्त रहियेगा यदि आपने रावण के प्रति शुभकामना प्रकट की है, तो निश्चित मैं रावण को मोक्ष दूंगा, यह मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। उसी भाव को प्रभु ने आलंकारिक, साहित्यिक भाषा में कहा, कि यदि मैं राम हूँ अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हूँ, तो अवश्य रावण को मोक्ष दूंगा। क्योंकि परमात्मा ही जीव को मोक्ष दे सकते हैं यह सामर्थ्य और किसी में नहीं है।

इसीलिये उन्ही परमात्मा का भजन करना चाहिये। श्रीमद्-भागवतजी में शुकाचार्यजी अपना निर्णय देते हुए कहते हैं कि

अकामः सर्वकामो वा पूर्णकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

(भागवत २।३।१०)

चाहे कोई कामना न हों, अथवा बहुत सी कामनायें हों अथवा सभी कामनायें पूर्ण हो गई हों, फिर भी तीव्र भक्ति योग से परम पुरुष परमात्मा का भजन करना चाहिये।

प्रश्न हुआ कि जिसके पास कामना नहीं, वह भगवान् का भजन क्यों करें?

इसलिये कि कामना पुनः मन में आ सकती है। जैसे नौका में छिद्र के कारण भरे हुए पानी को पूरा उलेच देने के बाद भी, सावधान नहीं रहने पर फिर से पानी भर जायेगा। और नौका डूब जायेगी। अतः भजन करो कि कहीं पुनः कामना मन में आ न जाय।

सर्व कामनायें हों तो भी परमात्मा का भजन करो। क्योंकि सम्पूर्ण कामनायें एकमात्र सर्वेश्वर परमेश्वर ही पूर्ण कर सकते हैं। प्रत्येक देवता केवल एक एक कामना पूर्ण कर सकते हैं—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्प मेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(गीता ७-२३)

अन्य देवताओं की दी हुई कामना सान्त होती है और भगवान् की दी हुई कामना अनन्त होती है।

अतः यहाँ पहले मानवीय दृष्टि से कहा कि जो मैं राम हूँ तो रावण का वध करूंगा। और जटायु के प्रति कहा कि जो मैं परब्रह्म परमात्मा हूँ तो न ही केवल रावण को, बल्कि उसके बान्धवगणों को भी मुक्त कर दूंगा, तब आप प्रसन्न हो जायेंगे।

गोस्वामीजी गीतावली में कहते हैं कि,

मेरो सुनियो तात संदेसो।
सीय हरन जनि कहेहु पिता सों ह्वै हैं अधिक अंदेसो॥

रावरे पुण्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं।
कुल समेत सुर सभा दसानन समाचार सब कहिहैं॥

सुनि प्रभु बचन राखि उर मूरति चरन कमल सिर नाई।
चल्यो नभ सुनत राम कल कीरति अरु निज भाग बडाई॥

पितु ज्यों गीध क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो।
ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो।।
(गीतावली अरण्यकाण्ड-१६)

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहुपट पीत अनूपा।
स्यामगात विशाल भुजचारी। अस्तुति करत नयन भरि वारी।।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि जीव कभी ब्रह्म नहीं बनता। भगवान् के सभी गुण जीव में आ सकते हैं पर श्रीवत्सलान्छनत्व नहीं आता। और "सृष्टि व्यापार—र्वजितम्" यह बात व्यासदेवजी के द्वारा ब्रह्मसूत्र में भी कही गयी है। अर्थात् ईश्वर के सभी गुण जीव में आ सकते हैं, पर जीव नयी सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकता। तब यहाँ जिज्ञासा हो सकती है कि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस श्रुति का क्या अर्थ करेंगे ?

ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। ऐसा अर्थ यहाँ नहीं है। "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" में चतुर्थी तत्पुरुष समास है। "ब्रह्मविद् ब्रह्मणे एव भवति" इस प्रकार की व्युत्पत्ति करके अर्थ करना चाहिये। यहाँ "सुपसुपा" इस पाणिनी नियमानुसार "एव" शब्द के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास है।

ब्रह्म को जानकर व्यक्ति ब्रह्म के लिये हो जाता है। जैसे मीराँ-बाई भगवान् को जान कर भगवान् के लिये हो गयी। तुलसीदासजी भगवान् के लिये हो गये। जैसे "जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई" तुम्हहि माने तुभ्यम्। "तुभ्यम्" के भ्यम् को "भ्यमो महिः" इस प्राकृत सूत्र से "महि" आदेश हुआ। तुम्हहि "तुभ्यम्" अर्थात् तुम्हारे लिये।

जीव ब्रह्म नहीं बन सकता, अतः भगवान् ने जटायुजी को अपने समान रूप दिया अर्थात् सारूप्य मुक्ति दी क्योंकि समानता में कुछ भिन्नता रहती ही है। भगवान् ने उन्हें अपने चतुर्भुजरूप के समानरूप दिया। अर्थात् उन्हें सत्वगुण सम्पन्न विष्णु का रूप दिया। वह रूप प्राप्त होने के बाद भी जटायुजी को अपने जीव भाव का स्मरण है। वे स्वामी नहीं बनना चाहते, दास भाव में ही रहना चाहते हैं। अतः विष्णु का रूप पाकर भी,

अस्तुति करहिं नयन भरि वारी।।

नेत्रों में आँसू भर कर स्तुति करने लगे। जटायुजी ने चार हरि-गीतिका छन्दों में श्रीराम की स्तुति की। प्रथम छन्द में रूप की, द्वितीय में नाम की, तृतीय में सगुण व निर्गुण लीला की तथा चतुर्थ-छन्द में भगवान् के धाम की स्तुति की।

इस प्रकार चारों छन्दों में श्रीरामजी की नाम, रूप, लीला व धाम की स्तुति की।

रामस्य नाम रूपञ्च, लीला-धाम-परात्परम्।
एतत् चतुष्टयं नित्यं, सच्चिदानन्द-विग्रहम्॥

अहो जटायुजी कितनी मार्मिक एवं कितनी भावपूर्ण स्तुति कुसुमांजलि प्रस्तुत कर रहे हैं। इनके हृदय में जो अद्भुत् प्रेमका सागर लहरा रहा है उसकी चार तरंगों का ही दिग्दर्शन गोस्वामी-पाद ने कराया है।

चतुर्भुज विष्णुरूप धारण करके वैष्णवपुंगव श्रीजटायु अपने चारों करकमलों को सम्पूटित करके चारों वेदों के महातात्पर्य भूत चार वाक्य को ही मानो पुष्प के रूप में प्रभु के पदकमल में सर्मपित कर कहे हैं।

जय रामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही।
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भयमोचनं॥

हे निरूपम रूप सम्पन्न निर्गुण तथा सगुण एवं वास्तविक रूप में समस्त गुणों के प्रेरक, कोशलेन्द्र श्रीराम आपकी जय हो। रावण की प्रचण्ड भुजाओं को खण्डित करने में समर्थ परमचण्ड बाणों को धारण करने वाले तथा पृथ्वी के आभूषण प्रभो! आपकी जय हो! अहो!!! आपका यह कितना प्यारा रूप नवीन बादल के समान श्रीविग्रह तथा कमल मुख एवं अरुण कमल के समान विशाल नेत्र-युक्त, आजानुबाहो, एवं भक्तों को संसार के भयों से मुक्त करने वाले कृपालु श्रीराम! मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

जटायुजी ने इस छंद में भगवान् श्रीराम के राम नाम का ही प्रधानतः निरूपण किया, किन्तु बिना अर्थ की भावना के जप फली-

भूत नहीं होता यथा "तद्जपस्तदर्थभावनम्" इस आशय से श्री रामनाम के अर्थरूप श्रीराघव के धनुर्धर रूप की झाँकी का नाम से पार्थक्य संभव नहीं। इसलिये जय राम कहने के साथ ही जटायुजी के लोचन में राजीव आयत लोचन थिरकने लगे।

व्याकरण के अनुसार भी नाम का अर्थ से अभेद सम्बन्ध ही स्वीकृत है।

नामार्थयोरभेदातिरिक्तः सम्बन्धः अव्युत्पन्नः।

गोस्वामीजी भी इस मान्यता को अत्यन्त प्रसन्नता से मानते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी।

यहाँ "जयराम" कहते ही दशरथनंदन श्रीराम रूप भक्त के हृदय में हठात् स्फुरित होने लगा। जटायुजी ने इससे यह संकेत भी किया कि रामनाम का मुख्य तात्पर्य कौशल्यानन्दवर्धन धनुर्धर श्रीराम में ही है। तथाकथित निराकार में नहीं। परशुराम एवं बलराम में भी राम शब्द गौणरूप में ही प्रयुक्त होता है। गोस्वामी जी ने दोहावली में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है।

सब साधन कर एक फल, जेहि जानेउ सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहि, राम धरे धनु बान॥

जय राम कहते ही जटायुजी ने जब कोटि कोटि कन्दर्पदर्प दलन, आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, नील नीरधर श्याम, निखिल लोक लोचनाभिराम परब्रह्म श्रीराम को निहारा, तब वे उपमा ढूंढने लगे आज विष्णुपद पाकर भी जटायुजी प्रभु के रूप का सादृश्य कहीं भी न पाकर चकित मुद्रा में बोल पड़े 'रूप अनूप" प्रभु! आपके रूप की कोई उपमा ही नहीं। क्योंकि उपमा निरन्तर रूप को उत्कृष्ट बनाने के लिये होती है, इसीलिये उपमेय की अपेक्षा उपमान उत्कृष्ट होता है। पर आज तो इस रूप सुधा सागर की एक तरंग के एक सींकर में सभी उपमान डूबे जा रहे हैं सरकार। मैथिलानी ने भी तो कहा है कि

मन भावहि मुख बरनिहि न जाही।
उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाही॥

आज जटायुजी ने जिस विष्णुरूप को प्राप्त किया है वे भी तो

मिथिलाधिराज श्रीजनकजी के द्वार पर वररूप में पधारे हुए बलाहक अश्व पर बिराजमान दूलह सरकार श्रीराम के दूलह वेष को देख कर लक्ष्मी के सहित मोहित हो गये थे।

हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।।

इस प्रकार रूप की निरूपमता कहकर जटायुजी ने कहा, प्रभु ! आप निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं। तथा आप से ही समस्त सद्गुणों की प्रेरणा मिलती है। यहाँ निर्गुण शब्द का तात्पर्य गुणरहित में नहीं है अपितु समस्त हेय गुणों से रहित होने के कारण भगवान् को निर्गुण तथा उपादेय गुणों से युक्त होने के कारण उन्हीं को सगुण कहा जाता है। "हेयगुणेभ्यः निष्क्रान्तः निर्गुणः ,गुणैः उपादेयगुणैः सह वर्तमानः सगुणः।

गुण और गुणी का नित्य सम्बन्ध न्यायशास्त्रों में प्रसिद्ध है "गुण गुणीनोश्च समुवायः" यद्यपि भगवान् को किसी गुण की अपेक्षा नहीं है फिर भी गुण उन्हें निरन्तर भजते हैं। गुणों का कहना है कि

ठाकुर हमें न भूलिये, लाख लोक मिल जाय।
हम अस तुम कहँ बहुत है, तुम अस हम कहँ नाय।।

यदि गुण भगवान् से अलग हो जाय तो उन्हें गुण कहे ही कौन ? क्योंकि परमात्मा वृत्तिधर्म को ही गुण कहते हैं। इस संसार को विधाता ने जड़ एवं चेतन के मिश्रण से बनाया है।

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।

दोष जगत् का धर्म है अतः जहाँ निर्गुण शब्द का प्रयोग हो वहाँ भगवान् हेय गुण से रहित हैं, यही तात्पर्य समझना चाहिये।

जटायुजी को भगवत् कृपा से भविष्यत् कालिन रावण वध लीला का भी ज्ञान हो गया। और वे बोले—"दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन महि।"

रावण की भुजाओं को काटने में केवल भगवान् राम के ही बाण समर्थ हैं, लंका के रणांगण में श्रीलक्ष्मण कुमार के बाण भी उसकी भुजाओं तथा सिरों को नहीं काट पाये

दस दस सर मारे दस भाला। गिरि शृंगनि जनु प्रविसहिं ब्याला।।

दिव्य रूप पाकर प्रभु की गोद से उतर कर जटायु अब सामने खड़े हो गये हैं, उनके समक्ष अब नील नीरधर श्याम भगवान् श्रीराम की ही बाँकी झाँकी है। अब उन्हें आकाश मार्ग से जाना है। यदवा जिनका आकाश पद है उन विष्णु का रूप प्राप्त कर लिया है। इसलिये आकाश की ही उपमा का प्रयोग करते हैं।

सतत अश्रुपात् होने से प्रभु के मुख एवं नेत्र दोनों जल से क्लिन्न हैं इसलिये दोनों को कमल से उपमित करके कहते हैं।

पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचनम् ।।

जटायु का अभिप्राय यह भी है कि राघव ! आपका श्रीविग्रह नीले जलधर के समान तथा आपके नेत्र अरुण कमल के समान हैं। इन दोनों का जल से सम्पर्क है ही अतः इन्हीं से मुझे जल की प्राप्ति हो गई, अब इतर जलांजलि की मुझे अपेक्षा नहीं है। जटायु को उठाने एवं रावण वध की प्रतिज्ञा के समय भुजा को ऊर्ध्व करने के कारण पहले की अपेक्षा और बाहु विशाल हो गये हैं।

अतः जटायुजी ने निर्भीक होकर कहा कि

नित नौमि राम कृपाल बाहु विसाल भवभय मोचनम् ।।

यहाँ "नौमि" यह क्रियापद् वर्तमान काल एवं भविष्यत् काल दोनों के लिये आया है। "अधुना नौमि भविष्येऽपि नित्यं नंष्यामि इति भावः।"

जटायुजी का अभिप्राय है कि प्रभु ! अभी तो आपको प्रणाम करता हूँ और भविष्य काल में साकेत जाने के बाद भी निरंतर प्रणाम करता रहूँगा। क्योंकि सेवक सेव्य भाव ही जीव का पारमार्थिक स्वरूप है। गीधराज का आशय है कि राघव ! गीध योनि में आकर अभी तक मैं बद्धजीव था।

त्रिजग जोनि गत गीध जनम भरि, खाई कुजन्तु जीयो हौं।

किन्तु आपने अपने भक्तवात्सल्य से मुझे तत्काल मुक्त बनाया और अपने धाम में जाने की अनुज्ञा देकर अब तो आप मुझे नित्य कैंकर्य में लेना चाहते हैं। इसलिये मैं आपका प्रणामरूप कैंकर्य ही नित्य किया करूंगा।

इस प्रकार की धारणा लंका के समरांगण में चक्रवर्ती दशरथ जो की भी दृष्टिगोचर होती है। पहले तो श्रीराघवेन्द्र ने संग्राम भूमि में पधारे हुए दशरथजी को प्रणाम किया।

अनुज सहित वंदन प्रभु कीन्हा। आसिर्वाद पिता तब दीन्हा॥

पश्चात् प्रभु की कृपा से सेवक सेव्य भाव सम्वन्ध का दृढ़ ज्ञान होने पर स्वयं चक्रवर्तीजी प्रभु को प्रणाम करके प्रसन्नता से सुरधाम गये।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ ज्ञाना।
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गयेउ सुरधामा॥

ठीक यही परिस्थिति आज जटायुजी की भी है। सीताजी का हरण हो चुका है। तथा लक्ष्मणजी भी पीछे खड़े हैं। एतदर्थ गीधराज केवल रामजी की ही स्तुति कर रहे हैं।

यद्वा दिव्य शरीर को प्राप्त जटायुजी को श्रीराम और लक्ष्मण जी में कुछ भेद् ही नहीं दीखता क्यों श्रीलक्ष्मणजी भी श्रीरामजी के अभिन्न अंश विराट् भी तो हैं।

अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भक्तसुखदाता॥

इस प्रथम छंद में भगवान् के नाम का वर्णन एवं "प्रज्ञानं ब्रह्म" इस महावाक्य का निर्देश हुआ। प्रज्ञानं का अर्थ है "प्रकृष्टं ज्ञानं यस्मिन्" जिसमें प्रकृष्ट ज्ञान हो। इस व्युत्पत्ति की "गुण प्रेरक सही" कहकर पुष्टि की गई है।

अब द्वितीय छंद में भगवान् के ऐश्वर्यात्मक रूप का वर्णन तथा "अयमात्मा ब्रह्म" इस द्वितीय महावाक्य का निर्वचन द्रष्टव्य है।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरम्।
गोविंद गोपर द्वन्दहर विग्यानघन धरनीधरम्।
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनम्।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनम्॥२॥

जटायुजी ने अब प्रभु के रूप का अलौकिक निर्वचन किया। भगवान् श्रीराम की चतुर्दश वर्षीय वनवास की प्रशस्ति में जटायुजी ने उन्हें चौदह विशेषणों से अलंकृत किया। ये ही प्रभु श्रीराम के रूप

की चौदह विशेषतायें भी हैं। इन्हीं को द्वितीयान्त पद से सूचित किया है।

हे अकाम प्रिय श्रीराम ! आप दिव्य बल सम्पन्न हैं। अर्थात् आप रावण को सरलता से मार सकेंगे अतः कहा बलम्।

अप्रमेयम्ः—प्रभु ने मानो जिज्ञासा की पिताजी ! मुझे आप ईश्वर कह रहे हैं किन्तु मेरी ईश्वरता में कोई प्रमाण भी है ?

गीधराज ने सरलता से कहा, अप्रमेयम् अर्थात् कौशल्यानंदन ! प्रमाण वहां प्रस्तुत किये जाते हैं, जहाँ वस्तु की सिद्धि नहीं होती।

"लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः"

भला जिनके चरणारविन्द का चिन्तन करके बड़े बड़े सिद्ध लोग समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं, उन नित्य सिद्ध आपको सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता क्या ?

प्रमाण प्रस्तुत करने पर क्या सिद्ध साधनदोष नहीं हो जायेगा।

प्रभो ! आप निर्दोष के समक्ष कौन साधनों को सदोष बनायें।।

वस्तुतः आज सनातन धर्म की यह विडम्बना है कि सामान्य मनुष्य भी थोड़े से चमत्कार के बल पर अपने को भगवान सिद्ध करने की कुचेष्टा कर रहा है।।

भला केप्सुल पर जीने वाले लोग जगत् का शूल कैसे दूर कर सकेंगे। इतने पर भी आज कम से कम सैकड़ों लोग मिथ्या चमत्कार से जगत को चकाचौंध करके अपने में भगवत्ता को दिखाने का स्वांग कर रहे हैं।

जब कि भगवान् श्रीराम परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म होकर भी

"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्"

यह कहकर अपने को मनुष्य ही प्रमाणित करते हैं।

पक्षिराज ने कहा सरकार ! दूसरी बात यह भी है कि प्रत्यक्षादि प्रमाण आपको सिद्ध भी नहीं कर सकते क्योंकि प्रत्यक्ष में इन्द्रियां प्रमाण हैं। "इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्।" वे इन्द्रियाँ आप तक पहुँच नहीं पातीं।

"ज्ञान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार"

उस प्रकार अनुमान से भी आपको कथमपि सिद्ध नहीं किया जाता। क्योंकि अनुमान का कारण व्याप्ति ज्ञान जो कि प्रत्यक्ष के ही अधीन है। जब आपका प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमान कैसे ?

मन समेत जहँ जाइ न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।

सुतीक्ष्ण ने भी कहा कि

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कष तर्क विषादः ।।

राघवेन्द्र अपने कटि तट पर तरकस बांधते हैं। मानो उससे वे जीव के समस्त तर्कों को ही समाप्त कर डालते हैं।

इस प्रकार उपमान भी आपको नहीं सिद्ध कर सकता। क्योंकि जब त्रिलोक में आपके समान कोई है ही नहीं तो सादृश्य ज्ञानमूलक उपमान की यहाँ संभावना कैसी ?

इसी प्रकार शब्द भी आपको सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि

मनक्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर विचर प्रभु सोई ।।

आप सर्वत्र उपलब्ध हैं इसलिये अनुपलब्धि का भी कोई यहाँ प्रसंग नहीं। तथा समस्त विरुद्ध धर्म के आश्रय होने से आपके विषय में अर्थापत्ति की ही नहीं जा सकती—

अप्रमेयं न प्रमातुं योग्यम् ।।

जटायुजी कह रहे हैं आप आद्यन्त रहित हैं। अनादिकाल से हमारा आपका सम्बन्ध है तथा आप अजन्मा हैं।

तात्पर्य यह कि सामान्य प्रार्थी की भाँति आपके यहाँ देह देही भाव नहीं है। आप अपनी योग माया से भक्तों की इच्छा अनुसार कौशल्या रानी की गोद में विनोद करने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं।

अव्यक्तम्—न जन्म लेकर भी आप शरीरधारी की भाँति लीला करते हैं अतएव सामान्य चक्षु से व्यक्त नहीं होते।

जटायुजी भगवत् तत्व को पूर्ण रूप से जानते हैं अतः एकम् कहकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि अन्य देवता अनेक रूपों में दीखते

है। वैकुण्ठबिहारी भगवान् विष्णु के चार रूप शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। शुक्ल, पीत, रक्त और और नील।

श्रीमद्भागवतजी में महर्षि गर्ग श्रीकृष्ण भगवान् के नामकरण के अवसर पर नंद बाबा से कह रहे हैं।

आसन् ह्यस्य त्रयो वर्णाः ग्रह्णतो नुयुगं तनुः।
शुक्लो रक्त स्तथा पीत इदानीं कृष्णतांगतः॥

पर श्रीराम सतत—"नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर श्याम"

के रूप में दीखते हैं। यह बात सती एवं भुषुण्डि के प्रसंग में बहुत स्पष्ट है।

सतीजी ने देवताओं को विविध वेषों में देखकर भी श्रीराम को एक ही रूप में देखा।

पूजत प्रभुहि देव बहु वेषा। राम रूप दूसर नहीं देखा।

भुषुण्डिजी तो अपने मुख से ही कह रहे हैं कि—

भिन्न भिन्न में दीख सब, अति विचित्र हरियान।
अगनित भुवन फिर्यों प्रभु, राम न देखेउ आन॥

जटायुजी ने आगे "अयमात्मा ब्रह्म" की दृष्टि से कहा, प्रभु! आप अगोचर, गोविन्द=बुद्धि के द्वारा गेय, गोपर=वाणी से परे द्वन्द्वों को हरनेवाले विज्ञानघन तथा धरणीधर होकर भी श्रीराममन्त्र जपने वाले महापुरुषों के मन का रंजन करते रहते हैं।

अभिप्राय यह है कि आप आत्मा अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी राममंत्र जापकों के लिये अत्यन्त निकट हो जाते हैं। यही तो "अयम्" पद का अर्थ है। क्योंकि अत्यन्त समीपवर्ती को ही "अयम्" से अभिहित करते हैं।

जटायुजी ने इस छंद में श्रीराममंत्रराज जप के लिये एक महत्वपूर्ण प्रेरणा दी तथा द्वितीय महावाक्य "अयमात्मा ब्रह्म" का निरूपण भी किया। इस महावाक्य का अर्थ है, ब्रह्म अर्थात् जो सबसे बृहद् है तथा आत्मा अर्थात् जो सर्वव्यापक है वही "अयम्"

अर्थात् भक्तप्रेमवश अत्यन्त समीप आ जाता है। जिसकी चर्चा इसी छंद में की गई है। आत्मा शब्द से यहां "आप्नोति व्याप्नोति इति आत्मा" इस व्युत्पत्ति के अनुसार "आप् लृ व्याप्तौ" इस धातु से व्यापक रूप परमात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अब तृतीय छंद में भगवान् की लीला एवं तृतीय महावाक्य "तत्त्वमसि" का निरूपण कर रहे हैं।

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं।
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई।।३।।

जटायुजी कहते हैं कि प्रभो! आपकी कितनी विचित्र लीला है। जो श्रुतियों के द्वारा निरंजनादि शब्दों से तद्रूप में प्रतिपादित है। तथा जिस आप परमात्मा को शरभंग आदि मुनिजन ध्यान से, सुतीक्ष्ण आदि मुनिगण ज्ञान से, अगस्त्य सनकादि आदि मुनिजन वैराग्य से, तथा नारदादि मुनिजन योग के माध्यम से "त्वम्" रूप में प्राप्त करते हैं। वही आज समस्त शोभाओं के निधान आप मेरे हृदय कमल में "असि" महावाक्यांश के रूप में विराज रहे हैं। इस प्रकार तृतीय छंद के प्रथम चरण में "तत्" द्वितीय चरण में "त्वम्" एवं तृतीय चरण में "असि" शब्द का निरूपण किया है।

अब चतुर्थ छंद में भगवान् के धाम एवं "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य के अर्थ का निरूपण किया है।

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा।
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।।४।।

जटायुजी कहते हैं, प्रभो! आप अभक्तों के लिये अगम तथा संतों के लिये सुगम हैं, एवं स्वभाव से आप निर्मल तथा रावणादि के लिये समान रूप से दण्डदाता एवं विभीषणादि के लिये ममतामय होने से असम हैं।

इन्द्रिय और मन को वश में करके योगीजन आपको ही देखते

हैं। अतः हे रमानिवास। आप मेरे ही हृदय में निवास करो! इस छंद में "मम उर बसहु" कह कर भगवान् के धाम का निरूपण एवं ब्रह्म के दोनों पक्षों का निरूपण करके उनको आत्मसात् करने की प्रार्थना कर, जटायु ने "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य का स्पष्ट दिग्दर्शन कराया।

यहाँ अहं पद उसी प्रकार तन्मयत्वका बोध करता है जैसे अग्नि के अत्यन्त सन्निकट रहने से लोहे में अग्नि का आरोप हो जाता है। अतः यहाँ सादृश्य में किंवा तन्निष्ठ में लक्षणा है।

इस प्रकार जटायुजी ने प्रथम छंद में सारूप्य, द्वितीय छंद में सायुज्य, तृतीय छंद में सामिप्य तथा चतुर्थ छंद में सालोक्य का प्रतिपादन कर अविरल भक्ति पाकर प्रभु का मंगलमय धाम प्राप्त किया तथा उनकी अंत्येष्टि क्रिया राघवेन्द्र ने द्विजाति मंत्रों के द्वारा सम्पन्न की।

वाल्मिकीय रामायण में साश्रुनयन होकर राजीवनयन ने स्पष्ट कहा है कि

या गतिर्यज्ञशीलानां आहिताग्नेश्च या गतिः
अपरावर्तीनां या वै या च भूमि प्रदायिनाम्
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननूत्तमाम्
गृद्धराज महासत्व संस्कृतश्च महाव्रज।

अर्थात् हे महासत्व जटायु! अब मैं ब्रह्मरूप में आपको अनुज्ञा दे रहा हूँ तथा अपने करकमल से आपका संस्कार करके भेज रहा हूँ उन श्रेष्ठ लोको में, जो यज्ञशीलों को, सतत अग्निहोत्र करने वालों को, ब्रह्मज्ञानियों को तथा भूमि प्रदान करने वालों को मिलता है। क्योंकि आपने समर यज्ञ किया है तथा अपने शरीर का हवन किया है एवं मुझ परब्रह्म की गोद में आसीन रहे एवं भूमिजा जानकी के रक्षण में अपनी जीवन यात्रा रूप भूमि का दान कर दिया है। प्रभु की इस क्रिया की सराहना भक्त कवि सूरदास ने भी की।

पितु की अंत क्रिया करिबे को, बड़ो पूत अधिकारी।
सो पितु क्रिया भरत कहँ सौंपी, प्रभु खग क्रिया सँवारी॥

गोस्वामीजी ने भी दोहावली में इसी आशय का दोहा प्रस्तुत

करते हुए कहा है, श्रीराघवेन्द्र ने चक्रवर्ती दशारथजी से दसगुनी अधिक भक्ति सहित भावना से जटायुजी की अन्त्येष्टि क्रिया की।

दशरथ ते दसगुनी भगति सहित तासु करि काज।
सोचत बंधु समेत प्रभु कृपा सिंधु रघुराज॥

श्री विनयपत्रिका में भी गोस्वामीजी यही कहते हैं कि—

नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसे पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई॥

श्रीरामजी के प्रति दो महानुभाव ने पुत्रविषयक रति स्वीकारी है। श्रीदशरथ तथा श्रीजटायु।

श्रीदशरथ भगवान् के चरणों में प्रेम करते हैं "बन्दउ अवध भूआल सत्य प्रेम जेहि रामपद। क्योंकि मनुरूप में उन्होंने यही वरदान माँगा था—

सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बरू मूढ कहै किन कोऊ।

पर जटायुजी ने भगवान् के चरणरेखा से रति की

"सुमिरत राम चरन चिन्ह रेखा"

दशरथजी को कैकेयी के क्रोध कृपाण ने घायल किया

सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठाँय।

जब कि जटायुजी को रावण के परम कराल कृपाण ने।

काढेसि परम कराल कृपाना॥

जटायुजी को रावण ने पक्षहीन किया।

काटेसि पंख परा खग धरनी।

उसी प्रकार दशरथजी को कैकेयी के कुकृत्यों ने।

राम राम रटि बिकल भुआलु। जनु बिनु पंख विहंग बिहालु।

जटायुजी पक्षी हैं तो यहाँ दशरथजी को भी पक्षी से उपमित किया गया।

जटायु वृद्ध हैं तो दशरथजी भी। जटायु पक्षियों के राजा हैं तो दशरथजी भी अयोध्यावासी रूप पक्षियों के राजा हैं उदाहरण

मनहु कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारी।

जटायु को रावण ने दो पक्षों से हीन किया तो दशरथजी भी श्री राम लक्ष्मण रूप दो पक्षों से हीन हुए।

दशरथजी ने पुत्र के वियोग में प्राण छोड़ा तो जटायु ने पुत्र वधु के वियोग में।

पर दशरथजी कैकेयी के कुकृत्य का प्रतिकार नहीं कर सके। किन्तु जटायुजी ने तो रावण से घोर संग्राम किया।

दशरथजी ने अयोध्यारूप अमर भूमि में शरीर त्यागा। "देवानां पूरी अयोध्या" तो जटायुजी ने समर भूमि में अपने शरीर का त्याग किया।

दशरथजी श्रीराम का संदेश सुनकर शरीर छोड़ते हैं। जबकि जटायुजी श्रीराम को सीताजी का संदेश सुनाकर महाप्रयाण करते हैं।

दशरथजी श्रीराघव के वियोग में शरीर छोड़ते हैं, जबकि जटायुजी श्रीराघव के संयोग में ही शरीर छोड़ते हैं।

दशरथजी सुरधाम जाते हैं "राउ गयउ सुरधाम।"

जब कि जटायुजी "गीध गयउ हरिधाम।"

मरण काल में दशरथजी राघव के वियोग से पीड़ित हैं। जब कि जटायु राघव के संयोग में पीड़ामुक्त हैं।

निरखि राम छबिधाममुख, बिगत भई सब पीर॥

मरणकाल में महाराज दशरथ भूमि पर पड़े हैं। "परेउ भूमितल निपट मलीना" जबकि जटायु भूमिजा पति की गोद में आमोद कर रहे हैं।

अन्तिम समय में महाराज के मुख पर विषाद एवं नयनों में शोकाश्रु हैं तो जटायु के मुख पर मुस्कुराहट एवं नेत्रों में प्रेमाश्रु।

☐ **मुख मुसुकाई कहि तेही बाता॥**
☐ **अस्तुति करत नयन भरि बारी॥**

दशरथजी से शरीर रखने के लिये कौशल्याजी अनुरोध करती हैं—

नाथ समुझि जिय करहु बिचारू। राम वियोग पयोधि अपारू।
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहित बूड़िहि सब परिवारू।

इधर जटायु से शरीर रखने के लिये अनुनय कर रहे हैं स्वयं कौशल्यानंदवर्धन श्रीराम।

महाराज के पार्थिव शरीर को तेल से भरी नाव में रखा गया। जब कि जटायु के पार्थिव शरीर को स्वयं जगत् के कर्णधार ने वेदमंत्रों से संस्कृत किया।

दशरथजी की अन्त्येष्टि क्रिया भरतजी ने सम्पन्न की इधर जटायुजी की क्रिया को सम्पादित किया भरताग्रज ने।

अतएव गोस्वामीजी ने श्रीजटायु की मृत्यु को आज तक के इतिहास में सर्वतोभावेन उत्कृष्ट कहा।

मुये मरेहि मरिहै सकल, घरि पहर के बीच।
लहि न काहुँ आज लौं, गीधराज सी मीच।।

आज गीधराज ने प्रभु का सुन्दररूप प्राप्त किया।

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हेउ जो जाचत जोगी।।

यह कितना मनमोहक रूप है। नारदजी भी इसी रूप को चाहते थे। विश्वमोहिनी का हाथ देखकर नारदबाबा को चक्कर आ गये, उन्होंने सोचा कि—

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि मिलइ कवन विधि बाला।।

स्वकीय पत्नी, पति के जप तप को बढाती है घटाती नहीं, किन्तु परकीया स्त्री में मन के जाने से जप तप सब नष्ट हो जाते हैं। विश्वमोहिनी नारायण की पत्नी है। उसे प्राप्त करने की इच्छा नारदजी को हो गई! उन्होंने सोचा कि विश्वमोहिनी जैसी सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिये बड़ा ही सुन्दर रूप चाहिये पर वह सुन्दर रूप मिले कहाँ से?

भगवान् गीताजी में कहते हैं कि मेरे चार प्रकार के भक्त हैं और ये चारों भक्त मुझे बहुत प्रिय हैं, ये चारों ही उदार हैं।

"उदारा: सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।।

श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी ने लिखा कि ये सभी उदार इसलिये हैं कि एक तो इन्हें कामना होती ही नहीं और होती भी है तो ये अपनी कामना भगवान् से ही मांगते हैं और किसी से नहीं माँगते।

इसीलिये भगवान् कहते हैं कि ये उदार हैं । ये मेरे पर कृपा करते हैं, ये मुझसे ही मांगते हैं, यदि ये और किसी के पास याचना करें तो मेरी बदनामी होगी। जैसे किसी महाराजा का नौकर, भिखारी से पैसे मांगे तो महाराजा की बड़ी बेइज्जती होगी, वैसे ही मेरे भक्त मुझे बदनामी से बचाते हैं अतः ये उदार हैं ।

नारदजी ज्ञानी भक्त है ।

"नारद विष्णु भगत पुनि ज्ञानी" ये भी उदार हैं क्योंकि जब इन्हें इच्छा हुई तो उन्होंने भगवान् से ही याचना की—

हरि सन मागौं सुन्दरताई । होइहि जात गहरू अति भाई ।।

क्योंकि उन्होंने निश्चय कर लिया है कि हरि के समान मेरा हितैषि और कोई भी नहीं है ।

मोरे हित हरि सम नहि कोऊ । एहि अवसर सहाइ सोइ होऊ ।

भगवान् प्रकट हो गये, नारदजी ने विश्वमोहिनी को देखा तब उनकी आँखें जल गईं, यदि जली न होतीं तो यह वाक्य न निकलते कि

"प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने"

यही अन्तर है कि नारी को देखने से आँखें जल गईं और नारायण को देखते ही ठंडी हो गईं !

प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने । होइहि काज हिएँ हरषाने ।।

बहुत जल्दी पूरी कथा सुनादी और कहा कि आपके सभी पोतों का विवाह हो गया मैं ही एक कुँवारा रह गया हूं । भगवान् ने पूछा कि मैं क्या सहायता कर सकता हूं ।

नारदजी ने कहा

आपन रूप देहुं प्रभु मोही । आन भाँति नहि पावौं ओही ।।

आप अपना रूप मुझे दे दीजिये और किसी प्रकार उसको नहीं

पा सकता। यहाँ "ओही" कह रहे हैं। भगवान् ने कहा, नाम नहीं ले रहे हो। नारदजी बोले, महाराज वो मेरी पत्नी होने वाली है तो नाम कैसे लूँ!

यहाँ नारदजी की जरासी भूल हो गई, क्योंकि आर्त होने के कारण ध्यान नहीं रहा

"रहत न आरत के चित चेतु"

यहाँ नारदजी को कहना था कि

"श्यामल रूप देहु प्रभु मोही"।

किन्तु उन्होंने कहा कि

"आपन रूप देहु प्रभु मोही"

"आपन" यह सर्वनाम याने "सर्वेषां नाम" जो सब जगह घटता है। भगवान् ने सोचा कि ये अपना रूप मांग रहे हैं तो

"विश्वरूप रघुवंसमणि, करउ बचन विश्वास"

पूरा विश्व ही मेरा रूप है। कौनसा रूप नारदजी को दूँ? ध्यान में आया कि इस समय इनकी मनोवृत्ति बन्दर जैसी हो गई है। बन्दर बहुत कामी होता है और कामान्धता के कारण उसे अपनी मा-बहन में भी भेद नहीं दिखता। उसी प्रकार आज नारदजी भी इतने कामान्ध हो गये हैं कि जो विश्वमोहिनी उनकी मां है उन्हीं से विवाह करने की सोच रहे हैं। और भगवान् के पास से हरि के रूप की याचना कर रहे हैं। अतः गोस्वामी जी कहते हैं कि

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हेउ जो जाचत जोगी।

अधम माँस-भक्षी गीध को भी प्रभु ने वह गति दी कि जिसकी याचना योगी करते हैं। तो योगी कौन? नारदजी योगी हैं।

"एकदा नारदो योगी"

(सत्यनारायण कथा १।२)

योगी नारद जिस हरि रूप को चाह रहे हैं भगवान् ने उन्हें अपना वह रूप नहीं दिया किन्तु गीधराज को वही रूप दिया

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।
श्याम गात बिसाल भुजचारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

यहाँ प्रश्न हुआ कि दोनों ही भगवान् के भक्त हैं फिर भगवान् ने ऐसा क्यों किया ? कि नारदजी को बन्दर का रूप दिया और जटायुजी को हरिरूप ।

इसका पहला कारण तो यह है कि भगवान् के पास जो नहीं मांगते उन्हें सहजता से सब कुछ मिलता है । नारदजी ने मांगा तो नहीं मिला और जटायुजी ने नहीं मांगा तो उनके ऊपर सामने से कृपा की ।

दूसरा समाधान यह है कि विश्वमोहिनी वही हैं जो आगे चलकर माया की सीता बनीं !

"पुनि माया सीता कर हरना"

उसी विश्वमोहिनी को नारदजी अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं और उसी माया की सीता को जटायुजी पुत्री बनाकर अपने जीवन का उत्कर्ष कर रहे हैं । अतः भगवान् ने जटायुजी के ऊपर कृपा की । उन्हें चतुर्भुज रूप दिया और नारदजी को चतुष्पाद बनाया दोनों में चार-चार संख्या घटती हैं ।

ऐसा इसलिये किया कि दोनों के पास चार वृत्तियाँ थीं । नारद जी के पास काम, क्रोध लोभ. और मोह थे, अतः उन्हें चार पैर वाले जानवर का रूप मिला और जटायुजी के पास नाम, रूप, लीला, धाम थे, अतः उन्हें चार भुजाओं वाला हरिका रूप मिला । इसीलिये "धन्य जटायू सम कोउ नाही ।"

व्यक्ति के जीवन में इन तीन वस्तुओं का विरोध निरन्तर बना रहता है । जो भुक्ति चाहता है उसे मुक्ति नहीं मिलती और जो मुक्ति चाहता है उसे भक्ति नहीं मिलती । पर धन्य हैं जटायुजी कि जिन्हें आज ये तीनों विरोधिनी वस्तु प्राप्त हो गईं !

जटायुजी को आज भगवद् अंग संग जनित परमानंद रूप भुक्ति मिली ।

"राघौ गीध गोद करि लीन्हो ।"

जटायुजी को सारुप्य मुक्ति मिली ।

"गीध देह तजि धरि हरि रूपा"

तथा आज उन्हें भक्ति भी मिली ।

"अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम"

इतना बड़ा व्यक्तित्व किसका होगा इस जगतीतल में कि जिसे एक ही साथ भुक्ति, मुक्ति तथा भक्ति मिली हो, अतः जटायुजी के समान धन्य कोई नहीं।

इस प्रसंग पर भगवान् के बड़े ही कृपापात्र, अन्तरंगतम, महाभागवत दक्षिणात्य कवियों के शिरोरत्नभूत, वैष्णव हृदय सम्राट श्री वत्सांक मिश्रजी ने अपने "अतिमानसस्तोत्र" ग्रन्थ में भगवान् के साथ एक विनोद किया। कभी-कभी भक्त, भगवान् के साथ बड़े मधुर-मधुर विनोद किया करते हैं। उन्होंने भगवान् से कहा, सरकार! हम आपसे एक प्रश्न पूछना चाहते है।

भगवान् ने कहा पूछो, तो कह रहें हैं।

पृच्छामि किंचन यदा किल राघव त्वे,
मायामृगस्य वशगो मनुजत्व मौग्ध्यात्।
सीतावियोगविवशो न च तत् गतिग्यः
प्रादात कथं परगतिं हि तदा खगाय॥

राघव! आप नाराज न होइयेगा। जब आप नर लीला कर रहे थे, तब अज्ञानी की भाँति मायामृग के पीछे-पीछे दौड़े, कनक मृग को भी पहचान न सके, और सीताजी के वियोग में विवश होकर उनकी गति को भी जान न सके जो अपनी पत्नी की गति का पता न लगा सके उन्होंने जटायु को परम गति कैसे दे दी?

भगवान् को जटायुजी के प्रति इतना प्रेम है कि वे बार-बार उन्हें "तात" सम्बोधन करते हैं!

- **राम कहा तनु राखहु ताता।**
- **तात करम निज ते गति पाई।**
- **तनु तजि तात जाहु मम धामा।**
- **सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाई।**

"तात" शब्द को चार बार कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् जटायुजी को संतोष दे रहे हैं कि पिताजी! आप घबराइयेगा नहीं, एक अवस्था की बात छोड़िये, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय इन चारों अवस्था में आप मेरे पिता हैं। मैं आपके लिये निरन्तर कृतज्ञ हूँ! दूसरों के लिये तो मैं भगवान् हो सकता हूं किन्तु आपके लिये तो मैं बालक हूँ।

संसार के लोग रिश्ता जोड़ना जानते हैं परन्तु निभाना तो केवल एक कौशलेन्द्र सरकार ही जानते हैं।

को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेहु निभाहनिहारा।

एक बार राघव और माधव दोनों के भक्तों में चर्चा हुई। माधव के भक्त ने कहा, श्रीकृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन है कि जो लताओं से भी प्रेम करता हो। राघव के भक्त ने कहा कि श्रीकृष्ण लताओं से प्रेम कर सकते है किन्तु किये हुए प्रेम को निभाना बिलकुल नहीं जानते। प्रमाण है!

मोही दशरथ लाल है, निर्मोही नन्दलाल।
वे ढूंढत बन बन फिरे, उन त्यागी ब्रजबाल।।

आज जटायुजी के ऊपर प्रभु की अति कृपा हो गई। उन्हें वे चारों मुक्तियाँ दे रहे हैं। मुक्ति के चार भेद शास्त्रों ने कहे हैं।

सामिप्य, सालोक्य, सायुज्य तथा सारूप्य।

ज्ञानी को एक ही मुक्ति मिलती है परन्तु जटायुजी को चारों मुक्तियाँ मिल गईं। क्योंकि वे चारों चरण चिन्ह रेखाओं का स्मरण कर रहे थे। पहले सामिप्य मुक्ति की चर्चा करेंगे। सामीप्य याने प्रभु के नजदीक रहना।

आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत रामचरन चिन्ह रेखा।

भगवान् राम निकट आ गये सामीप्य मिल गया। दूसरी मुक्ति है सायुज्य याने भगवान् से जुड़ जाना तो, 'कर सरोज सिर परसेउ' इतना ही नहीं

राघौ गीध गोद करि लीन्हो।

तीसरी सारूप्य भी मिली।

"गीध देह तजि धरि हरि रूपा"

चौथी मुक्ति है सालोक्य वह भी प्राप्त हो गई।

अविरल भगति मागि बर गीध गयऊ हरिधाम।

इन चारों मुक्तियों के मिलने के साथ अविरल भक्ति भी प्राप्त हुई!

भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने जटायुजी को मिल कर लोकानन्द दिया। कर सरोज के स्पर्श से ब्रह्मानंद दिया तथा अपना सारूप्य देकर परमानन्द का दान दिया। इसी तरह से मानो ऐसा लग रहा है कि प्रभु ने जटायुजी के ऊपर कृपा करके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष एवं भक्ति सभी कुछ दे डाला।

अर्थ दिया—अर्थ याने धन, भगवान् "मुनिजन धन" है भगवान् ने अपने को ही दे डाला !

धर्म दिया—स्वयं जटायु कह रहे हैं कि "महाराज सुकृति समाज सब ऊपर आज कियो हैं।" मेरा इतना पुण्य बढ़ाया कि सबसे ज्यादा पुण्यवान् बना कर आपने मुझे पिता का पद दिया !

काम दिया—जटायुजी की यही एक कामना थी "मरत न मैं रघुवीर विलोके" अरे रे मरते मरते भी मैं रघुनाथजी को देख नहीं पाऊँगा क्या ऐसे ही मर जाऊंगा। उनकी इच्छा पूर्ण की। मंगलमय शोभा की झाँकी निरख रहे हैं "निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर" कामना पूर्ण हो गई।

मोक्ष दिया—"गीध देह तजि धरि हरि रूपा" और भक्ति भी दी।

"अबिरल भगति मागि बर गीध गयऊ हरिधाम"

अब देने जैसा कुछ भी शेष नहीं रहा। अपने आप को भी भगवान् ने दे दिया।

सुनि प्रभु बचन राखि उर मूरति।

भगवान् को उन्होंने अपने हृदय में रख लिया। अब प्रसन्नता से जा रहे हैं।

तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

उनके पार्थिव शरीर की क्रिया प्रभु रामजी ने अपने हाथों से की।

पिता दशरथजी के पास तो तीन पुत्र और हैं अतः उनकी उत्तर-क्रिया भरतजी ने की किन्तु जटायुजी के तो केवल राघव ही एकमात्र पुत्र हैं अतः इनकी क्रिया राघव ने अपने हाथ से की।

यहाँ एक और भाव है। यहाँ शब्द है। "निज कर कीन्हीं राम"

"निज कर कीन्हीं" शब्दों में सप्तमी समास है। भगवान् ने लक्ष्मण-जी से कहा।

लक्ष्मण ! कोई ऐसा स्थान बताओ जहाँ पर किसी का भी दाह-संस्कार न हुआ हो।

लक्ष्मणजी ने कहा, सरकार ! ऐसी कोई भूमि नहीं है, जहाँ किसी प्राणि का दाह-संस्कार न हुआ हो।

तब राघवेन्द्र ने कहा तो लक्ष्मण ! मेरे हाथ पर जटायुजी की चिता लगाओ। मेरे हाथ पर ही जटायुजी का अग्नि संस्कार होगा, अतः कहाकि

तेहि की क्रिया जथोचित निजकर कीन्हीं राम ॥

उत्तर क्रिया के पश्चात् जटायुजी के सभी जातीय बन्धुओं को बुलाया और उन्हें भोजन दिया।

गीध समाज ने कहा कि प्रभु बिना मांस खाये हमारा पेट नहीं भरता।

भगवान् ने कहा कि कोई बात नहीं, जब मैं रावण के साथ युद्ध करूंगा तब सभी पक्षियों को निमन्त्रित करूंगा, उस समय आप सभी राक्षसों का मांस पेट भर-भर के खा लेना।

भगवान् शंकरजी ने कहा कि अपने पिता के श्राद्ध में हमें कुछ नहीं दोगे !

प्रभु ने पूछा आप क्या लोगे ?

शंकरजी ने कहा कि हमें ऐसे मुण्डों की माला चाहिये जिनके मुख से राम नाम निकल रहा हो। राघवेन्द्र ने कहा। रावण के मरते समय आप कालिकायें को भेज दीजियेगा आपको ऐसे ही मुण्डों की माला मिल जायेगी। और पिताजी के श्राद्ध का दान भी हो जायेगा अतः वर्णन है कि

कहँ राम कहि सिर निकर धाये देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले।

सिर मालिका कर कालिका गहि बृन्द बृन्दन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं॥

इस प्रकार भगवान् श्रीराम ने जटायुजी की उत्तर क्रिया सम्पन्न करके उन्हें परम गति का सौभाग्य दिया। और परम बड़भागी जटायु सदा के लिये विश्व के इतिहास-गगन में अमर हो गये

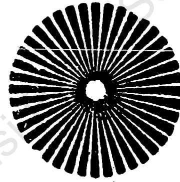
अतएव अंगदजी ने उचित ही कहा—

कह अंगद बिचारि मन माही, धन्य जटायू सम कोउ नाही।
राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयउ परम बडभागी ।।

सीता त्राण चिकिर्षया सुतुमुलं कृत्वा रणं रक्षसा।
भूयस्तत् करवालकाल विलुलत् पक्षोलुठन् भूतले।
श्रीरामाश्रुकलाभिषिक्त करणे र्भक्ति र्गति शाश्वतीम्।
स्वरयातोऽस्ति जटायुषो भुवि समः को नाम धन्यः पुमान् ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। श्री सीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ।।



श्री जानकीजी की जटायुजी से आर्तभरी प्रार्थना

जटायु मेरे अब तुम होउ सहाई।
नीच दसानन हरत चपरि मोहि, काहे न लेहु छुडाई ।।१।।

ससुर मीत मेरे ससुर सरिस तुम्ह. सुनहु गोहारिहि आई।
दलि दसबदन बदन निज चोचन्ह, देहु बिपति बिबराई ।।२।।

तव सुतवधू हरत रजनीचर, बेग करहु खगराई।
कामधेनु मारत यह पाँवर, खल मनुजाद कसाई ।।३।।

रुदन अकनि पहिचानि सीय कहँ, खगपति टेर सुनाई।
रे रे दुष्ट ठाढ़ रहूँ छन भरि, मृत्यु निकट तोहि आई ।।४।।

करि रन रिपु बिच लाइ पंख बिनु, प्रभु पद भगति हि पाई।
"गिरिधर" प्रभुहि नवाइ सीस गह्यो, हरिपुर सुजस चलाई ।।५।।

